तिरंगा
अगरबत्ती
तीन भारतीय खुशबुओं में
NO. 1 BRAND

॥ ओ३म् ॥

अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

★ तत्रत्यश्चतुर्थो भागः ★

कारकीयः

❀ पाणिनीयाष्टाध्याय्यां तृतीयो भागः ❀

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ।

श्रीपण्डितयुधिष्ठिर-मीमांसकेन संशोध्य
टिप्पणीभिरलंकृतः

पठनपाठनव्यवस्थायां षष्ठं पुस्तकम् ।

प्रकाशक
आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर

प्रथमावृत्ति १००० | संवत् २०१२ दयानन्दाब्द १३२ | मूल्य ।।≈)

प्रकाशक—
आर्य-साहित्य मण्डल लिमिटेड,
अजमेर.

मुद्रक—
शिरीशचन्द्र शिवहरे, एम० ए०
दी फाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर

भूमिका

मैंने कारकीय ग्रन्थ इसलिये बनाया है कि जिससे पढ़ाने और पढ़ने वालों को सुगमता से कारक का बोध होके वेदादि शास्त्रों का वाक्यार्थ बोध सुगमता से होवे। मनुष्य जितना अर्थ कारकों से जान सकता है उतना अन्य प्रकरणों से नहीं, क्योंकि यह कारकसमूह क्रिया द्रव्य और गुणवाची शब्दों के संबन्ध से समस्त वाक्यों के अर्थों का प्रकाशक है। उच्यतेऽर्थस्य विज्ञानाय विज्ञापनाय वा यत्तद्वाक्यम्। जो अर्थ के जानने और जनाने के लिये कहा जाता है, वह वाक्य कहाता है। जो मनुष्य आठों[1] कारकों की विद्या को यथावत् जान लेता है वह वाक्यार्थों में सुबोध होता है। जिस लिये कारक संज्ञा के अधीन ही प्रथमा आदि विभक्तियों का विधान अष्टाध्यायी में है। इसलिये इस ग्रन्थ में कारक सूत्रों के साथ विभक्ति विधायक सूत्रों को भी लिख के उदाहरण प्रत्युदाहरण लिखे हैं। यहां एक उदाहरण वा प्रत्युदाहरण को जान और जना के उसके सदृश असंख्यात उदाहरणों को अध्यापक लोग जान लें और विद्यार्थियों का भी जना देवें कि जिस से सद्यः संस्कृत बोल, दूसरे के संस्कृत को

---

१. संस्कृत व्याकरण के अनुसार "शेष" अर्थात् "सम्बन्ध" की कारक संज्ञा नहीं होती। आर्यभाषा के व्याकरण में इसकी कारक संज्ञा मानी है। यतः यह ग्रन्थ आर्यभाषा में लिखा गया है अतः उसी के अनुसार यहां भी व्यवहार किया है। हेतु की कर्ता संज्ञा भी होती है अतः वह कर्ता के अन्तर्भूत है। यहां उसे पृथक् गिना है। इसी ग्रन्थ का देखो उपक्रम प्रकरण। यु० मी०।

समझ और वेदादि शास्त्रों के वाक्यार्थ जान के व्यवहार में भी बहुत उपकार होवे। जैसे किसी से किसी ने पूछा कि "त्वं कस्मादागच्छसि" तूं कहां से आता है। वह उत्तर देवे कि "नगरात्" नगर से। इस एक ही पद से कारक का जानने हारा "अहमागच्छामि" इन दोनों पदों के कहे विना भी पूरा वाक्यार्थ जान लेता है। कारकों के बोध ही से मनुष्य कारक विषयों का विद्वान् हो सकता है इत्यादि प्रयोजनों के लिये कारकों का जानना जनाना सब को उचित है। ग्रन्थ में अ० संकेत से अष्टाध्यायी । पहली संख्या से अध्याय, दूसरी से पाद और तीसरी से सूत्र समझ लेना।

॥ इति भूमिका ॥

विषय सूची

विषय	पृष्ठ

सम्पादकीय

वेदाङ्गप्रकाश के संशोधित संस्करण प्रकाशित करने का जो उपक्रम आर्य साहित्य मण्डल ने किया है उसी के फलस्वरूप यह कारकीय नामक भाग प्रकाशित किया जा रहा है। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है आर्य जनता इसका भी पूर्व भागों के समान ही स्वागत करेगी।

इस ग्रन्थ में कई टिप्पणियां ग्रन्थकार की हैं, कुछ हमारी हैं। हमने अपनी टिप्पणी के साथ 'यु० मी०' संकेत कर दिया है और हमने अपने टिप्पणी १, २, ३ संख्या का संकेत करके लिखी हैं। ग्रन्थकार की टिप्पणी ꕥ + आदि विविध चिन्हों से युक्त है।

कारकीय ग्रन्थ के लिखने, शोधने और प्रथम संस्करण के छपने से सम्बद्ध सम्पूर्ण वृत्त हम अपने 'ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' नामक बृहद् ग्रन्थ में लिख चुके हैं। उसे पाठक उसी ग्रन्थ में अवलोकन करें। पुनः लिखना पिष्टपेषणवत् होने से यहां नहीं लिखा।

विदुषांवशंवदः—
युधिष्ठिर मीमांसक

कारकीयान्तर्गत व्याख्यातानां सूत्रवार्तिकादीनां वर्णानुक्रमसूची

॥ ओ३म् ॥

अथ कारकीयः

अथोपक्रमः

(प्र०) कारक और कारकीय किसको कहते हैं।

(उ०) यत् करोति तत् कारकम्। जो करने हारा अर्थ है वह कारक कहाता है और इस ग्रन्थ में इसका व्याख्यान है, इसलिये इसको कारकीय कहते हैं।

(प्र०) कारक कितने प्रकार के होते हैं।

(उ०) आठ—कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, शेष[1] अधिकरण और हेतु। इनमें से—

कर्त्ता उसको कहते हैं कि जो पदार्थ, सकल साधनयुक्त होके स्वतन्त्रता से सब क्रियाओं को करे। जैसे—देवदत्तः पठति, आकाशो वर्त्तते, इत्यादि। यहां विद्या पठन क्रिया का कर्त्ता देवदत्त † और वर्तमान क्रिया का आकाश है।

---

१ वस्तुतः शेष की गणना कारक में नहीं होती, परन्तु हिन्दी भाषा के व्याकरण में इसे कारक कहा है। उसी के अनुसार यहां लिखा है। यु० मी०।

† स्वतन्त्रः कर्त्ता [अ० १।४।५५] इससे यहां कर्ता संज्ञा होती है। सब कारकों में एकवचन के उदाहरणों से पृथक् द्विवचन बहुवचन के प्रयोग भी जान लेना।

कर्म उसको कहते हैं कि जो किया जाय। इसके तीन भेद हैं— ईप्सिततम, अनीप्सितयुक्त और अकथित। ईप्सिततम कर्म उसको कहते हैं जिसको अत्यन्त अभीष्ट जान के करें। जैसे—सुखमिच्छति, भोजनं करोति, ओदनं पचति, ग्रामं गच्छति, इत्यादि। यहां सुख होने की इच्छा, भोजन का करना, चावल का पकाना, और ग्राम को जाना किसी विशेष प्रयोजन के लिये अत्यन्त अभीष्ट होने से ईप्सिततम कर्म कहाता है। अनीप्सितयुक्त कर्म उसको कहते हैं कि जिसकी इच्छा तो न हो परन्तु संयोग होने से किया ही जावे। जैसे—देवदत्तो ग्रामं गच्छन् चोरान् पश्यति, कण्टकानुल्लङ्घयति, इत्यादि। यहां चोरों को देखने और कांटों में चलने की इच्छा तो किसी को नहीं होती, परन्तु संयोग से चोरों को देखना और कांटों उल्लङ्घन करना अवश्य होता है। अकथित कर्म उसको कहते हैं कि जिसका किसी गौण † भाव से निमित्त करके ईप्सिततम के साथ योग हो। जैसे—गां दोग्धि पयः, माणवकं पन्थानं पृच्छति, इत्यादि ‡ यहां लड़के को पूछने रूप निमित्त के विना मार्ग का ज्ञान और गाय का दोहनरूप निमित्त के विना दूध की प्राप्ति नहीं हो सकती, परन्तु इस पृच्छति क्रिया के साथ लड़के और दोग्धि क्रिया के साथ साक्षात् गाय का सम्बन्ध नहीं है किन्तु पन्था और दूध का है।

करण उस को कहते हैं जिस से कर्ता अपने कर्त्तव्य कर्म को कर सके। इस के दो भेद हैं गौण और मुख्य। गौण करण उस को

---

† ईप्सिततम मुख्यकर्म और अकथित गौण कहाता है और मुख्यकर्म के विना गौण किसी वाक्य में नहीं आता।

‡ यहां दूध का निमित्त गौ और मार्ग का बालक गौणकर्म तथा दूध और मार्ग मुख्य कर्म हैं।

कहते हैं कि जो साधारणता क्रिया कि सिद्धि का निमित्त हो। जैसे—हस्ताभ्यां फूत्कारादिनाग्निः प्रज्वलति, इत्यादि। यहां अग्नि की जलन क्रिया का निमित्त हाथ और फूंकनादि क्रिया हैं। मुख्य करण कारक उसको कहते हैं कि साक्षात् सम्बन्ध से कर्तव्य कर्म की सिद्धि में यथावत् उपयुक्त हो, जिसके विना वह कर्म कभी न हो सके। जैसे—इन्धनैरग्निः प्रज्वलति, अग्निनौदनं पचति, इत्यादि। यहां अग्नि को जलाने में इन्धन और चावल के पकाने में अग्नि ही मुख्य साधक है।

संप्रदान उस को कहते हैं जिस का अभीष्ट सिद्ध किया जाय। जैसे—विद्यार्थिने विद्यां ददाति, अध्यापकाय धनं प्रयच्छति, अतिथयेऽन्नादिकं ददाति, इत्यादि। यहां विद्यादान कर्म से विद्यार्थी, धनदान क्रिया से आचार्य और अन्नादि पदार्थ के देने से अतिथि का अभीष्ट सिद्ध किया जाता है, इसलिये ये संप्रदान हैं।

अपादान उसको कहते हैं कि जहां प्राप्त का त्याग और अप्राप्त देश की प्राप्ति की जाय। जैसे—गृहादागच्छति गच्छति वा, गुरुकुलादागच्छति गच्छति वा, ग्रामादागच्छति गच्छति वा *, इत्यादि। यहां पढ़ने के लिये प्राप्त घर को छोड़ कर अप्राप्त पाठशाला और पूर्णविद्या पढ़ के गुरुकुलनिवासरूप देश को छोड़ कर जन्मभूमि को प्राप्त होना प्रयोजन है, किन्तु छोड़ने रूप क्रिया के कर्म की अपादान

---

* यहां ग्रामादागच्छति, ग्रामादागच्छतः, ग्रामादागच्छन्ति, इत्यादि सब वचन और तीनों पुरुष के प्रयोग होते हैं क्योंकि एक स्थान से एक और अनेक का भी आना सम्भव है। और कई स्थानों से एक पुरुष का आना नहीं बनता इसी कारण अपादानसंज्ञक शब्द में सब वचन नहीं होते और जहां अनेक स्थानों से अनेकों का आना होगा वहां अपादान में भी सब वचन होंगे। ग्रामाभ्यामागच्छतः, ग्रामेभ्य आगच्छन्ति इत्यादि।

संज्ञा है, अर्थात् जिसका वियोग कर दूसरे को प्राप्त होना होता है।

शेष कारक उसको कहते हैं कि जो अर्थ अपादानादि संज्ञाओं से गृहीत न हो। जैसे—यस्य प्रशस्तभाग्यशालिनो यज्ञदत्तस्य पुत्रः पठति। यहां पठनक्रिया के कर्ता पुत्र का सम्बन्धी यज्ञदत्त पिता है जिस का पुत्र पढ़े वह भाग्यशाली है। वेदस्य मन्त्रस्यार्थं जानाति। वेद के मन्त्र के अर्थ को जानता है। यहां मन्त्र का वेद और अर्थ का शेष मन्त्र है। अयसः कुठारेण वृक्षं छिनत्ति। लोह के कुल्हाड़े से वृक्ष को काटता है यहां लोहा कुल्हाड़े का शेषार्थ है। आप्तस्याऽध्यापकस्य विद्यार्थिने ददाति। निष्कपट सत्यवादी पूर्णविद्यावान् पढ़ानेहारे पण्डित के विद्यार्थी को देता है। यहां विद्यार्थी का शेष पढ़ाने हारा है। राज्ञो ग्रामादागच्छति। राजा के ग्राम से आता है। यहां ग्राम का शेष कारक राजा है। राज्ञः पुरुषस्य पुत्रो दर्शनीयोऽस्ति। राजा के पुरुष का पुत्र देखने में सुन्दर है। गुरोः कुले निवसति। विद्यार्थी पढ़ने के लिये गुरु के कुल में निवास करता है। यहां अधिकरण कारक कुल शब्द का शेष गुरु है। राज्ञो मन्त्री देवदत्तं ग्रामं गमयति, इत्यादि। राजा का मन्त्री देवदत्त को ग्राम में भेजता है। यहां हेतु कारक मन्त्री का शेष राजा है। इसी प्रकार शेष कारक को सब से बड़ा जानो, क्योंकि यह सब के साथ व्यापक रहता है। इसके विना कोई कारक नहीं रहता, चाहे शेष का प्रयोग हो वा न हो।

अधिकरण उसको कहते हैं कि जो आधेय का आधार रूप अर्थ हो। सो तीन प्रकार का होता है। तद्यथा—

अधिकरणं नाम त्रिः प्रकारकं भवति। व्यापकमौपश्लेषिकं वैषयिकमिति महा० अ० ६। पा० १ सू० ७२। व्यापक, औपश्लेषिक, वैषयिक। व्यापक अधिकरण उस को कहते हैं कि जिसका योग सब व्यक्ति और अवयवों में रहे, जैसे—दिक्काला-

काशेषु सर्वे पदार्थाः सन्ति, ईश्वरे सर्वं जगद् वर्तते, ❀ इत्यादि। दिशा, काल और आकाश में सब पदार्थ रहते और सब जगत् ईश्वर में है। औपश्लेषिक उस को कहते हैं जहां आधार और आधेय का संयोग हो, जैसे—खट्वायां शेते, गृहे निवसति, इत्यादि। यहां खाट और सोने वाले और घर तथा घर में रहने वाले का स्पर्शमात्र संयोग है। वैषयिक उसको कहते हैं कि जिस में जो रहे, जैसे—धर्मे प्रतिष्ठते, विद्यायां यतते †, इत्यादि। मनुष्य की धर्म में वर्तने से प्रतिष्ठा और जो विद्या में यत्न करता है वह ज्ञानी होता है।

हेतु कारक उसको कहते हैं कि जो अर्थ क्रिया करने हारे का प्रेरक हो। जैसे—देवदत्तो विद्यामधीते, गुरुरेनं विद्यामध्यापयति, विचक्षणो धर्मं करोति, उपदेष्टैनं धर्मं कारयति, इत्यादि। यहां पढ़ने हारे विद्यार्थी के पढ़ने के लिये प्रेरक गुरु और धर्म के करने हारे चतुर पुरुष को धर्म कराने हारा उपदेशक है। और इसमें इतना विशेष समझना चाहिये कि साक्षात् करने हारे की कर्तृ कारक संज्ञा और प्रेरणा करने हारे की हेतु संज्ञा है।

(प्र०) वाक्य किसको कहते हैं।

(उ०) आख्यातं साव्ययकारकविशेषणं वाक्यम्[1]। सविशेषणमेकतिङ् वा[2]। जो आख्यात अव्यय, कारक और विशेषण-

---

❀ जैसे—तिलेषु तैलम्, दधनि घृतम्, इत्यादि भी व्यापक अधिकरण में गिने जाते हैं, क्योंकि तिलों के सब अवयवों में तेल और दही के सब अवयवों में घृत व्यापक है। दिशा आदि के उदाहरण सामान्य और ये तिलादि के विशेष हैं।

† प्रतिष्ठा का विषय धर्म और विद्या प्रयत्न का विषय है।

१. महाभाष्य २।१।१॥ २. महा० २।१।१॥ वहां "सक्रियाविशेषणं च, एकतिङ्" ऐसा पाठ है। किन्हीं के मत में "आख्यातं सविशेषणम्" इतना ही लक्षण वाक्य का है। यु० मी०।

युक्त हो सो वाक्य कहाता है। साव्यय जैसे—देवदत्त उच्चैः पठति, इत्यादि। देवदत्त ऊंचे स्वर से पढ़ता है। सकारक–मनुष्यो धर्ममाचरेत्, इत्यादि। मनुष्य धर्माचरण करे। सविशेषण—बुद्धिमान्देवदत्त ऋजु पठति, इत्यादि। बुद्धिमान् देवदत्त कोमलता से पढ़ता है। अथवा जिसमें विशेषण युक्त एक तिङन्त पद हो वह वाक्य कहाता है इसी के पूर्वोक्त उदाहरण–देवदत्त उच्चैः पठति, इत्यादि जानो।

(प्र०) वाक्य के कौन से प्रयोजन हैं।

(उ०) अनेक अर्थ की प्रतीति और व्यवहार में प्रवृत्ति आदि हैं, क्योंकि—अर्थगत्यर्थः शब्दप्रयोगः। अर्थं प्रत्याययिष्यामीति शब्दः प्रयुज्यते ॥ महाभाष्य ॥ अ० १। पा० १। सू० ४४। आ० ७। अर्थ के जानने के लिये शब्द का प्रयोग किया जाता है। वक्तुं योग्यं पदसमुदायं वाक्यम्—जो कहने को योग्य हो, जिसमें अनेक पदों का योग हो वह वाक्य कहाता है। जब तक कोई किसी को वाक्य बोल के अर्थ का बोध नहीं कराता तब तक उसका प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता, व्यवहार में प्रवृत्ति नहीं होती और जब तक व्यवहार ठीक २ नहीं होता तब तक उसका कार्य सिद्ध होकर सुखप्राप्ति रूप प्रयोजन भी सिद्ध नहीं होता। इसलिये वाक्य और वाक्यार्थ का बोध करना सब मनुष्यों को अवश्य उचित है।

(प्र०) वाक्यार्थ बोध में कितने कारण हैं।

(उ०) चार—आकांक्षा, योग्यता, आसक्ति और तात्पर्य।

आकांक्षा * उस को कहते हैं कि वाक्य में जिन पदों का प्रयोग है उनके साथ जिन अप्रयुक्त पदों का अवश्य सम्बन्ध करना हो।

---

* इन के विना कोई भी वाक्य नहीं होता और न इनके जाने विना और ग्रन्थ के वाक्यों के सत्य २ अभिप्राय का बोध किसी को हो सकता है।

जैसे—अनुतिष्ठत, यहां अनुतिष्ठत इस क्रिया पद के साथ यूयं और धर्मं इन दो पदों, और "यूयमधर्मम्" इस वाक्य में संत्यजत † इस क्रिया पद की आकाङ्क्षा अवश्य है, क्योंकि इनके विना वाक्य की पूर्त्ति कभी नहीं हो सकती। तथा अनाकाङ्क्षा उस को कहते हैं कि जिस वाक्य में सब योग्य पदों का प्रयोग हो जैसे—यूयं धर्ममनुतिष्ठत, यूयमधर्मं संत्यजत, इत्यादि उदाहरण समझ लेना।

योग्यता उस को कहते हैं कि जो पद जिसके साथ प्रयोग करने योग्य हो वा जिस से जो कार्य सिद्ध होता हो उन्हीं का प्रयोग करना। जैसे—चक्षुषा पश्यति, श्रोत्रेण शृणोति, जलेन सिञ्चति, अग्निना दहति, इत्यादि। मनुष्य आंखों से देखता, कान से सुनता, जल से सींचता और अग्नि से जलाता है। यहां वाक्यार्थ की योग्यता है। और "कर्णेन पश्यति, हस्तेन शृणोति, अग्निना सिञ्चति, जलेन दहति" इत्यादि में वाक्यार्थ की योग्यता नहीं है क्योंकि कान से देखने, हाथ से सुनने, आग से सींचने और जल से जलाने का कभी संभव नहीं हो सकता। [इसलिये ये वाक्य नहीं कहाते]

आसत्ति उस को कहते हैं कि जिस पद की जिसके साथ योग्यता हो उस को उसी के साथ बोलना। जैसे—हे देवदत्त त्वमिति कंचित्प्रति प्रातरुक्त्वा सायंकाले ब्रूयाद् ग्रामं गच्छेति। कोई किसी से प्रातःकाल "हे देवदत्त तू" ऐसा कह कर चुपचाप रहे पश्चात् सायंकाल में कहे कि "ग्राम को जा"। यहां चार पहर के विलम्ब होने से इसका वाक्यार्थ बोध किसी को नहीं हो सकता, क्योंकि पदों का अभिसंबन्ध निकट नहीं है। और जैसे— हे देवदत्त

† वाक्य का लक्षण तिङ् के विना नहीं किया, इस कारण इसको शुद्ध वाक्य नहीं कह सकते, किन्तु आकांक्षित वाक्य कहावेगा।

त्वं ग्रामं गच्छ, इत्यादि वाक्य अर्थबोधक हो सकते हैं, क्योंकि यहां कर्ता कर्म और क्रिया का उच्चारण एक समय में समीपस्थ है।

तात्पर्य उस को कहते हैं कि वक्ता जिस अभिप्राय के जनाने के लिये वाक्य बोले, उसी के अनुकूल दूसरे को समझना उचित है। जैसे किसी ने कहा कि "मह्यं देहि, अत्रादातव्यमेव दद्यादिति वेदितव्यम्" जैसे किसी ने किसी से कहा कि आप मुझ को कुछ दीजिये, यहां ग्रहण करने के योग्य पदार्थों का मिलना वक्ता का प्रयोजन है। ऐसा न समझना कि "अयं दुःखदायिवस्तुयाचक इत्यस्य तात्पर्यार्थः" पूर्व वाक्य में कोई ऐसा समझे यह मुझ से दुःखदायक पदार्थों को चाहता है, ऐसा समझना उसके तात्पर्यार्थ से विरुद्ध है। इसलिये इन सब को वाक्य बोध के कारण अवश्य जानने चाहियें॥

॥ इत्युपक्रमः ॥

१–कारके ॥ अ० १ । ४ । २३ ॥

संज्ञाधिकार के बीच पढ़ने और आगे-आगे सूत्रों में इसकी अनुवृत्ति होने से यह [संज्ञा और] अधिकार सूत्र है। इस से जहां-जहां स्वतन्त्र आदि कर्ता आदि की संज्ञा की जावेगी वहां सर्वत्र कारक शब्द का अधिकार समझा जावेगा। क्रिया और द्रव्य का संयोग होने पर क्रिया की सिद्धि करने वाले को कारक कहते हैं।

१–[कर्तृकारक]

२–स्वतन्त्रः कर्ता ॥ अ० १ । ४ । ५४ ॥

"स्व" आप "तन्त्र" प्रधान। स्वतन्त्र जो आप ही क्रिया के करने में प्रधान हो उस की कर्तृकारक संज्ञा है।

३–तत्प्रयोजको हेतुश्च ॥ अ० १ । ४ । ५५ ॥

जो स्वतंत्र को प्रेरणा करने वाला हो, उस की हेतु और कर्ता दोनों संज्ञा होती हैं।

* ४–प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा ॥ अ० २ । ३ । ४६ ॥

जो जिस अर्थ के साथ समर्थ होता है उस को प्रातिपदिकार्थ कहते हैं। इस के अर्थमात्र, लिङ्ग अर्थात् स्त्री, पुरुष, नपुंसकमात्र, परिमाण अर्थात् तोल मात्र और वचन–एक, दो, बहुत मात्र, इन अर्थों में प्रथमा विभक्ति होती है। इसी सूत्र के भाष्य में लिखा है कि—"तिङ्समानाधिकरणे प्रथमत्येतल्लक्षणं करिष्यते" अस्ति भवति आदि तिङन्त क्रियाओं के साथ जिस का समानाधिकरण हो (अर्थात् जो उक्त, कथित और अभिहित है) उस में प्रथमा विभक्ति होती है[1]। इस से भिन्न कारकों में द्वितीयादि होती हैं सो

---

* यहां प्रातिपदिकार्थ उस को कहते हैं कि जो उस शब्द की सत्तामात्र हो और अर्थ के साथ शब्द का विशेष संबन्ध होता है, इसलिये लिङ्ग आदि का ग्रहण है। जैसे—पुमान्। इस शब्द में जो पुरुष व्यक्ति के साथ सामान्य सम्बन्ध है वही प्रातिपदिकार्थ है और पुरुषपन अर्थात् स्त्री से अलग होना है यह प्रातिपदिकार्थ नहीं है किन्तु लिङ्ग है।

१ विभक्ति विधायक प्रकरण में 'अनभिहिते' (का० ६) का अधिकार है। अतः जिस कर्ता का कर्तृत्व 'तिङ्' आदि से अभिहित नहीं होता वहां कारकीय ४०वें सूत्र से तृतीया विभक्ति होती है। जहां कर्तृत्व अंश तिङ् आदि से कह दिया जाता है अर्थात् कर्ता अर्थ में तिङ्प्रत्ययों की उत्पत्ति होती है (देखो आख्या० ५) वहां प्रतिपादिकार्थ मात्र के शेष रहने से इस (कार० ४) सूत्र से प्रथमा विभक्ति

आगे कहेंगे। कर्ता और हेतु कारक के उदाहरण प्रातिपदिकार्थमात्र में–देवदत्तो ग्रामं गच्छति, यज्ञदत्तो देवदत्तं ग्रामं गमयति, देवदत्त ओदनं पचति, यज्ञदत्तो देवदत्तेनौदनं पाचयति, इत्यादि। यहां गच्छति, पचति क्रिया के करने में देवदत्त स्वतन्त्र होने से कर्ता और यज्ञदत्त की प्रेरणा का कर्म है उस का इन्हीं क्रियाओं के साथ समानाधिकरण होने से उस में प्रथमा विभक्ति होती है। तथा [प्रातिपदिक के] अर्थ मात्र के कहने से उच्चैः, नीचैः, इत्यादि में भी प्रथमा विभक्ति हो जावे। लिङ्गमात्र में-कुमारी–यहां जो प्रातिपदिकार्थ बालक प्रथमा अवस्था है उससे स्त्रीत्व पृथक् है इसलिये प्रातिपदिक [अर्थ मात्र में] प्राप्त नहीं थी। पुल्लिङ्ग–वृक्षः। वृक्ष एक ❀ जाति है, यहां जो जातित्वमात्र प्रातिपदिकार्थ है वह पुल्लिङ्ग व्यक्ति से पृथक् है। नपुंसक–कुलम्। यहां भी नपुंसकपन प्रातिपदिकार्थ जो जनसमुदाय है उससे पृथक् है। परिमाणमात्र में–द्रोणः, खारी, आढकम्। इन तोल के वाची शब्दों में प्रथमा होती है †। वचनमात्र

होती है। वस्तुतः यहां कर्ता में तृतीया विभक्ति निदर्शक "कर्तृकरणयोस्तृतीया" (का० ४०) सूत्र उद्धृत करना चाहिये था, परन्तु व्यवहार में प्रायः कर्तृवाचक तिङन्त का प्रयोग होता है और वहां तिङ् द्वारा कर्तृत्व के अभिहित होने से प्रथमा विभक्ति होती है अतएव यहां प्रथमा विभक्ति विधायक सूत्र उद्धृत किया है। यु० मी०।

❀ एक शब्द के उच्चारण से सामान्य अर्थात् असंख्य व्यक्तियों का बोध होना जाति कहाती है। सो वृक्ष शब्द के उच्चारण से व्यक्ति, आकृति और जाति तीनों का बोध होता है। लिङ्गार्थ इन तीनों से पृथक् है।

† तोलन-साधक द्रोण आदि शब्द, घृत आदि मेय अर्थात् परिमाण विषयों के संबन्ध में मान अर्थात् इयत्ताकरणार्थ होने से प्रातिपदिकार्थ से पृथक् हैं इसलिये इनका ग्रहण है।

में—एकः, द्वौ, बहवः। यहां जो एक दो और बहुत संख्यात्व है वह प्रातिपदिकार्थ से पृथक् है। यहां मात्र ग्रहण इसलिये है कि इससे भिन्न अन्यत्र कर्मादि के विषय में प्रथमा न हो।

२–[कर्मकारक]

५–कर्तुरीप्सिततमं कर्म ॥ अ० १ । ४ । ४६ ॥

जो बहुत कारकों से युक्त वाक्य के बीच में कर्ता को अत्यन्त इष्ट कारक है, वह कर्म संज्ञक होता है। इस का फल—

६–अनभिहिते ॥ अ० २ । ३ । १ ॥

यह अधिकार विभक्तिविधान प्रकरण में है। अभिहित उसको कहते हैं कि जिस से लकारादिप्रत्ययान्त क्रियाओं का समानाधिकरण होवे। और जिसमें लकरादि प्रत्ययों का समानाधिकरण न हो उस को अनभिहित, अनुक्त और अकथित भी कहते हैं। इस के आगे जो जो विभक्तिविधानप्रकरण के सूत्र लिखे जावेंगे, उन सब में यही अधिकार समझा जावेगा। और संज्ञाप्रकरण का अधिकार लिख चुके हैं।

७–कर्मणि द्वितीया ॥ अ० २ । ३ । २ ॥

अनभिहित कर्म कारक में द्वितीया विभक्ति हो। ग्रामं गच्छति, वेदं पठति यज्ञं करोति। यहां ग्राम का जाना, वेद का पढ़ना और यज्ञ का करना अत्यन्त इष्ट है * इसलिये ग्राम वेद और यज्ञ की कर्म संज्ञा हो के द्वितीया विभक्ति हो जाती है। इसी प्रकार सर्वत्र

* जो पदार्थ अत्यन्त इष्ट नहीं होता उस की सिद्धि के लिये शरीर इन्द्रिय मन बुद्धि आदि की यथार्थ प्रवृत्ति नहीं होती, फिर उस की कर्म संज्ञा भी नहीं हो सकती।

जानना। अनभिहित का प्रयोजन यह है कि "पाठ्यो वेदः" यहां वेद शब्द के अभिहित[1] होने से द्वितीया न हुई।

* ८-वा०-समया निकषा हा प्रति योगेषूपसंख्यानम् ॥ २।३।२

समया निकषा हा प्रति इन चार अव्ययों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। समया ग्रामम्, निकषा ग्रामम्, हा देवदत्तम्, देवदत्तं प्रति। यहां सर्वत्र देवदत्त और ग्राम शब्द में द्वितीया विभक्ति हुई है।

९-वा०-अपर आह—

द्वितीयाऽभिधानेऽभितः परितः समया निकषाऽध्यधि धिग्योगेषूपसंख्यानम् ॥ २।३।२ ॥

समया और निकषा शब्द पूर्ववार्तिक में आ चुके हैं इन के उक्त उदाहरण जानने। अभितः परितः अध्यधि धिक् इन शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होवे। अभितो ग्रामम्, परितो ग्रामम्, अध्यधि ग्रामम्, धिग्जाल्मम्।

१०-का०-अपर आह—

उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु।
द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते ॥ २।३।२ ॥

---

[1] यहां 'पाठ्य' का ण्यत् प्रत्यय "तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः" (अष्टा० ३।४।७०) से कर्म अर्थ में होता है। अतः वेद का कर्मत्व अंश कृत्य प्रत्यय द्वारा अभिहित अर्थात् कथित है। उसके अभिहित होने से द्वितीया नहीं हुई। -यु० मी०।

* यहां अनभिहित कर्म नहीं है इसलिये यह द्वितीयाविभक्तिविधान प्रकरण बांधा है।

उभयतस् सर्वतस् धिक् उपर्युपरि अध्यधि अधोऽधो इन के योग में भी द्वितीया विभक्ति होवे। जैसे—उभयतो ग्रामम्, सर्वतो ग्रामम्। धिग्जाल्मम्, उपर्युपरि ग्रामम्, अध्यधि ग्रामम्, अधोऽधो ग्रामम्। और इन के योग से अन्यत्र जहां किसी सूत्र वार्तिक से द्वितीया विधान न हो वहां भी इसी कारिका के प्रमाण से होती है। जैसे—बुभुक्षितं न प्रति भाति किञ्चित्, इत्यादि। यहां प्रति के योग में द्वितीया हुई है।

११–तृतीया च होश्छन्दसि ॥ अ० २ । ३ । ३ ॥

वेद विषय में "हु" धातु के अनभिहित कर्मकारक में तृतीया और चकार से द्वितीया भी होती है। यवाग्वाऽग्निहोत्रं जुहोति, यवागूमग्निहोत्रं जुहोति। छन्द का ग्रहण इसलिये है कि "यवागूमग्निहोत्रं जुहोति" यहां लोक में तृतीया विभक्ति न हो।

१२–अन्तरान्तरेण युक्ते ॥ अ० २ । ३ । ४ ॥

अन्तरा, अन्तरेण इन दो अव्ययों के योग में द्वितीया विभक्ति हो *। अग्निमन्तरा कथं पचेत्, अग्निमन्तरेण कथं पचेत्।

१३–कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे ॥ अ० २ । ३ । ५ ॥

अत्यन्त संयोग अर्थ में कालवाची और मार्गवाची शब्दों से द्वितीया विभक्ति होवे। मासमधीतोऽनुवाकः, क्रोशं कुटिला नदी †। यहां अत्यन्त संयोग ग्रहण इसलिये है कि "दिवसस्य द्विर्भुङ्क्ते" इत्यादि में द्वितीया न हो।

---

* यह द्वितीया विभक्ति का प्रकरण है और पूर्वसूत्र में तृतीया-विधान है, सो द्वितीया का ही अपवाद है। इसलिये यहां तृतीया की अनुवृत्ति नहीं आती, द्वितीया की ही आती है। और यह सूत्र अपूर्व विधायक है अर्थात् अन्तरा अन्तरेण इन अव्ययों के योग में किसी विभक्ति का विधान किसी सूत्र से नहीं है।

१४—अपवर्गे तृतीया ॥ अ० २ । ३ । ६ ॥

जो शुभ कर्म की समाप्ति है उसको अपवर्ग कहते हैं। इस अत्यन्त संयोग अर्थ में कालवाची और मार्गवाची शब्दों से तृतीया विभक्ति हो। मासेनाधीतोऽनुवाकः, क्रोशेनाधीतोऽनुवाकः। यहां अपवर्ग ग्रहण इसलिये है कि "मासमधीतोऽनुवाको न चानेन गृहीतः" इत्यादि स्थल में तृतीया न हो ‡।

१५—सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये ॥ अ० २ । ३ । ७ ।

जो अत्यन्त संयोग अर्थ में दो कारकों के बीच काल और मार्गवाची शब्द हों तो उनसे सप्तमी और पञ्चमी विभक्ति हों। अद्य भुक्त्वा द्व्यहाद् भोक्ता, द्व्यहे भोक्ता; इहस्थोऽयमिष्वासः देवदत्तो क्रोशाल्लक्ष्यं विध्यति, क्रोशे लक्ष्यं विध्यति इत्यादि।

१६—गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि ॥ अ० २ । ३ । १२ ॥

जिन की चेष्टा क्रिया विदित होती हो, ऐसे गत्यर्थक धातुओं के मार्ग रहित अनभिहित कर्म में द्वितीया और चतुर्थी विभक्ति हों। ग्रामं गच्छति, ग्रामाय गच्छति, ग्राममेति, ग्रामायैति ❀। गत्यर्थक

---

† यहां अत्यन्त संयोग यह है कि महीने के बीच पढ़ने में कोई अनध्याय वा विक्षेप न हुआ, यह उस काल और पठनक्रिया का अत्यन्त संयोग है। क्रोश भर टेढ़ी नदी, यहां मार्ग और नदी का अत्यन्त संयोग है क्योंकि क्रोश भर में टेढ़ाई व्याप्त है।

‡ अर्थात् जहां एक महीने में पढ़ के समाप्त कर दिया हो और अच्छी प्रकार जान लिया हो, वहीं हो।

❀ यहां अनभिहित कर्म में "कर्मणि द्वितीया" (का० ७) इससे द्वितीया ही पाती है, उसका यह अपवाद है।

धातुओं का ग्रहण इसलिये है कि "कटं करोति" यहां चतुर्थी न हो। कर्म ग्रहण इसलिये है कि "अश्वेन गच्छति" यहां करण में द्वितीया और चतुर्थी न हों। चेष्टा ग्रहण इसलिये है कि "मनसा गृहं गच्छति" यहां चेष्टा के न होने से चतुर्थी नहीं होती और अनध्वनि ग्रहण इसलिये है कि "अध्वानं गच्छति" यहां चतुर्थी न हो।

१७–वा०–अध्वन्यर्थग्रहणम् ॥ २ । ३ । १२ ॥

अध्व के पर्यायवाची शब्दों का भी निषेध में ग्रहण होना चाहिये। जैसे—अध्वानं गच्छति यहां चतुर्थी नहीं होती, वैसे ही "पन्थानं गच्छति" इत्यादि में भी चतुर्थी न हो।

१८–वा०–आस्थितप्रतिषेधश्च ॥ २ । ३ । १२ ॥

मार्गवाची मुख्य शब्दों का निषेध होना चाहिये। क्योंकि उत्पथेन पन्थानं गच्छति, पथे गच्छति" † यहां चतुर्थी का निषेध न हो जावे।

अब कर्म संज्ञा में जो विशेष सूत्र वार्त्तिक तथा कारिका बाकी हैं, वे लिखते हैं। उन में कर्म संज्ञा होके प्रथम सूत्र से ही द्वितीया विभक्ति होती है।

१९–तथायुक्तं चानीप्सितम् ॥ अ० १ । ४ । ५० ॥

जिस प्रकार ईप्सिततम कारक की कर्म संज्ञा होती है वैसे ही जिसका अकस्मात् योग हो जाय तो उस अनीप्सित युक्त की भी कर्म संज्ञा हो। ग्रामं गच्छन् वृकान् पश्यति, तृणानि स्पृशति। ग्राम को जाता हुआ भेड़ियों को देखता और घास का स्पर्श करता जाता है। भेड़ियों का देखना तो अनिष्ट है और घास का स्पर्श होना इष्ट

† यहां मार्गवाची मुख्य शब्द यों नहीं है कि गड़बड़ मार्ग से शुद्ध मार्ग के लिये जाता है। शुद्ध मार्ग का चलना नहीं है।

अनिष्ट दोनों ही नहीं। इष्ट केवल ग्राम का जाना है सो उसकी कर्म संज्ञा पूर्वसूत्र से हो गई। यहां भेड़िया और घास की कर्म संज्ञा हो जाने से द्वितीया विभक्ति हो जाती है।

२०—अकथितं च ॥ अ० १ । ४ । ५१ ॥

अपादान आदि सब कारकों में जिस की कोई संज्ञा न की हो उसको अकथित कहते हैं। उस अकथित की भी कर्म संज्ञा हो जावे। जैसे—अजां नयति ग्रामम्, भारं वहति ग्रामम्। यहां अजा और भार शब्द की तो कर्म संज्ञा "कर्त्तुरी०" [कार० ५] इस उक्त सूत्र से सिद्ध ही है। ग्राम शब्द में किसी कारक संज्ञा की प्राप्ति नहीं थी, इस से उसकी इस सूत्र से कर्म संज्ञा हो के द्वितीया होती है। जो इस सूत्र का व्याख्यान महाभाष्यकार ने किया है सो लिखते हैं—

२१—का०—दुहियाचिरुधिप्रच्छिभिक्षिचिञामुपयोगनिमित्त-
मपूर्वविधौ । ब्रुविशासिगुणेन च यत् सचते तद-
कीर्तिमाचरितं कविना ॥ १ । ४ । ५१ ॥

इस कारिका से सूत्र का प्रयोजन दिखलाया है। दुह, याच, रुध, प्रच्छ, भिक्ष, चिञ्, ब्रूञ् और शासु इन धातुओं के योग में उपयोग * का जो निमित्त हो, उसकी अपूर्वविधि अर्थात् जिसका

---

* उपयोग उसको कहते हैं कि जिसका क्रिया के साथ मुख्य सम्बन्ध हो और उसका निमित्त वह है कि जिसके बिना उसकी सिद्धि न हो। जैसे—पौरवं गां याचते। यहां गौ तो उपयोगी कर्म है वह ईप्सिततम होने से पूर्व सूत्र से कर्म संज्ञक हो जाता और इसी कर्म का याचन क्रिया के साथ मुख्य सम्बन्ध है और पौरव जो दाता पुरुष है वही इस गौ का निमित्त है उसके बिना गौ नहीं मिल सकती। इसलिये पौरव अकथित कर्म है उसकी कर्म संज्ञा इस सूत्र से होती है॥

विधान पूर्व अपादान आदि कारकों में कुछ भी न किया हो तो इस सूत्र से कर्म संज्ञा हो। जैसे–गां दोग्धि पयः, याच–पौरवं गां याचते, रुध–गामवरुणद्धि व्रजम्, प्रच्छ–माणवकं पन्थानं पृच्छते, भिक्ष–पौरवं गां भिक्षते, चिञ्–वृक्षमवचिनोति फलानि, ब्रूञ्–पुत्रं धर्मं ब्रूते, शासु–सन्तानं धर्मं शास्ति।

(प्रश्न) जहां कर्म कारक में लकारादि प्रत्ययों का विधान है, वे जहां दो कर्म हों वहां किस कर्म में होने चाहियें।

(उत्तर)-२२–का०–कथिते लादयश्चेत्स्युः षष्ठीं कुर्यात्तदा गुणे॥
अकारकं ह्यकथितात्कारकं चेत्तु नाकथा ॥१।४।५१॥

विचार करते हैं कि जो कथित प्रधान कर्म में लकारादि प्रत्यय किये जावें तो गौण अर्थात् अकथित कर्म में षष्ठी विभक्ति होनी चाहिये। जैसे–दुह्यते गोः पयः, याच्यते पौरवस्य कम्बलः। क्योंकि जो अकथित है वह कारक नहीं, किन्तु जो कथित है वही कारक है। जिस जिस में लकारादि प्रत्यय होते हैं उस उस कथित कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है और जो अकथित है कि जिस में किसी विभक्ति की प्राप्ति नहीं, उस के शेष होने से वहां षष्ठी हो जाती है।

२३–का०–कारकं चेद्विजानीयाद्यां यां मन्येत सा भवेत्
॥ १ । ४ । ५१ ॥

और जिसको अकथित जानते हो उसको जो कारक जानो तो जिस जिस कारक संज्ञा में उसकी प्रवृत्ति हो सकती हो, वही विभक्ति उसमें करनी चाहिये। जो उस अकथित की अपादान संज्ञा हो सकती हो तो वहां पञ्चमी विभक्ति करनी चाहिये। जैसे–दुह्यते गोः पयः, याच्यते पौरवात् कम्बलः।

पूर्वकारिका से जो कथित कर्म में लकारादि प्रत्ययों का विधान

किया सो किसी किसी आचार्य का मत है। अब तीसरी कारिका से पाणिनिजी का मत दिखलाते हैं—

२४–का०–कथितेऽभिहिते त्वविधिस्त्वमतिगुणकर्मणि लादिविधिः सपरे। ध्रुवचेष्टितयुक्तिषु चाप्यगुणे तदनल्पमतेर्वचनं स्मरत ॥ २४ ॥

जो कथित कर्म में लकारादि प्रत्यय होते हैं यह तुम्हारी बुद्धि से तुमने विधान किया है ॥। परन्तु पाणिनीजी के मत से तो गौण अथात् अकथित कम में लकारादि प्रत्यय होने चाहियें। इसी प्रकार–"गतिबुद्धि०" इस आगे के सूत्र में [भी] गौण कर्म में लकारादि प्रत्यय होते हैं। गौर्दुह्यते पय, गौर्दोग्धव्या पयः, गौर्दुग्धा पयः, गौः सुदोहा पयः, इत्यादि। जहां अप्रधान गौ कर्म में लकारादि प्रत्यय होते हैं वहां अभिहित होने से प्रथमा और पयः के अनभिहित होने से द्वितीया विभक्ति होती है। तथा (ध्रुवयुक्ति) अकर्मक और (चेष्टितयुक्ति) गत्यर्थक धातुओं के (अगुणे) [मुख्य अर्थात्] कथित कर्म में लकारादि प्रत्यय होने चाहिये। जैसे—अकर्मक–आसितव्यो देवदत्तो यज्ञदत्तेन, गत्यर्थक–अजा नेतव्या ग्रामम्। महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि कहते हैं कि हे वैयाकरण लोगो! अगाध बुद्धि वाले पाणिनि आचार्य का यह मत है, तुम लोग जानो। अब जो मत अन्य बहुत आचार्यों का है, सो चौथी कारिका से दिखाते हैं—

२५–का०–प्रधानकर्मण्याख्येये लादीनाहुर्द्विकर्मणाम्।
अप्रधाने दुहादीनां ण्यन्ते कर्तुश्च कर्मणः ॥
१। ४। ५१ ॥

॥ यह संकेत उन लोगों की ओर है कि जिनका मत प्रथम कारिका से कथित कर्म में लकारादि प्रत्ययों का होना दिखलाया है।

जो द्विकर्मक धातु हैं उनके प्रधान = कथित कर्म में लकारादि प्रत्यय होने चाहिये। जैसे—अजां नयति ग्रामम्, अजा नीयते ग्रामम्, अजा नीता ग्रामम्। यहां प्रधान कथित अजा कर्म है, उस में लकारादि के होने से प्रथमा विभक्ति और ग्राम में अनभिहित होने से द्वितीया होती है। तथा दुहादि अर्थात् जो धातु प्रथम कारिका में गिनाये हैं उन के अकथित अर्थात् गौण कर्म में लकारादि प्रत्यय होने चाहिये। इस के उदाहरण दे चुके हैं। और णयन्तावस्था में जिन धातुओं के जिस कर्त्ता की कर्म संज्ञा होती है, उन के उसी कर्म में लकारादि प्रत्यय होने चाहिये। जैसे—यज्ञदत्तो गच्छति ग्रामम्। यहां यज्ञदत्त गमधातु का प्रथम स्वतन्त्र कर्ता और ग्राम कर्म है। जब उस का णयन्तवस्था में प्रयोजक कर्ता देवदत्त होता है तब यज्ञदत्त की कर्म संज्ञा हो जाती है। देवदत्तो यज्ञदत्तं ग्रामं गमयति। यहां अप्रधान यज्ञदत्त है उसी में लकार होने से—देवदत्तेन यज्ञदत्तो ग्रामं गम्यते। यहां गौण कर्म यज्ञदत्त में प्रथमा विभक्ति होती है और ग्राम में द्वितीया हो जाती है। यह चौथी कारिका से जो लकारादि प्रत्यय विधान में व्यवस्था की है सो बहुत ऋषि लोगों का सिद्धान्त है। इससे यही व्यवस्था सब से बलवान् है।

जो प्रथम कारिका में कहे हैं, उन से भिन्न द्विकर्मक धातु कितने हैं सो पांचवीं कारिका से दिखाते हैं।

२६—का०—नीवह्योर्हरतेश्चाऽपि गत्यर्थानां तथैव च।

द्विकर्मकेषु ग्रहणं द्रष्टव्यमिति निश्चयः ॥१।४।५१॥

नी, वहि, हरति और णयन्तावस्था में जिनका कर्ता कर्म होता है, वे सब द्विकर्मकों में गिने जाते हैं। अकर्मक धातु सकर्मक कैसे होते हैं, यह विषय छठी कारिका से दिखाते हैं—

२७—का०—कालभावाध्वगन्तव्याः कर्मसंज्ञा ह्यकर्मणाम्
॥ १ । ४ । ५१ ॥

[अकर्मक धातुओं के] काल = क्षण आदि, भाव* = होना, अध्वगन्तव्य = चलने योग्य मार्ग, ये तीनों कर्म हो जाते हैं। जैसे काल—मासमास्ते, मासं स्वपिति। अयुक्त एक मास बैठा रहता है और एक मास सोता है, यहां महीना कर्म हो गया। प्रयोजन यह है कि एक महीना बैठ के काटता है और एक महीना सोके काटता है तो बैठने और सोने का कर्म महीना हो गया। भाव—गोदोहमास्ते, गोदोहं स्वपिति। यहां गौ का जो दोहना भाव है वही उसके बैठने और सोने का कर्म है। अध्वगन्तव्य—क्रोशमास्ते, क्रोशं स्वपिति। सवारी में बैठ के मार्ग में चलता हुआ मनुष्य कोश भर बैठा, कोश भर सोया। अर्थात् जो दो कोश बैठने और सोने में मार्ग व्यतीत किया वही बैठने सोने का कर्म हो गया है।

२८—वा०—देशश्चाकर्मणां कर्मसंज्ञो भवतीति वक्तव्यम्॥
१ । ४ । ५१ ॥

इस वार्तिक से अकर्मक धातुओं का देश भी कर्म संज्ञक होता है। जैसे—पञ्चालान् स्वपिति। कोई विमान आदि यान में बैठा हुआ

---

* यहां भावं = भवनं = भूतिं भवति देवदत्तः। जैसे भाववाची भाव आदि शब्द भवति-क्रिया के कर्म होने से भू धातु सकर्मक हो जाता है वैसे सब अकर्मक धातुओं की व्यवस्था जाननी। देवदत्त एधनमेधते, इत्यादि। यहां। कृदभिहितो भावो द्रव्यवद्भवति ॥ महाभाष्य अ० ३। पा० १। सू० ६६। कहा है कि जो तव्यदादि प्रत्ययों से कथित भाव है वह द्रव्य के समान होता है॥

पंजाब[1] देश भर सोता ही चला गया। उसके सोने का कर्म पंजाब देश हो गया।

२६—का०—विपरीतं तु यत् कर्म तत्कल्म कवयो विदुः ॥ १ । ४ । ५१ ॥

ईप्सिततम कर्म से भिन्न जो कर्म है उस को विद्वान् लोग कल्म कहते हैं। जिस के बीच में कर्म संज्ञा के सब काम नहीं किये जाते किन्तु केवल द्वितीया विभक्तिमात्र ही की जाती है तथा जिस किसी में अन्य भी कर्मसंज्ञा के कार्य होते हों उस से जो दूसरा होता है वह विपरीत कर्म कहाता है, उसी को कल्म कहते हैं जैसे—भारं वहति ग्रामम्, यहां प्रधान जो भार कर्म है उस में तो कर्म के सब कार्य होते हैं और ग्राम शब्द में केवल द्वितीया विभक्ति होती है। इस से इस की कल्म संज्ञा है। [तथा "गां दोग्धि पयः" यहां प्रधान कर्म तो पय है परन्तु लकारादि प्रत्यय विधान कर्म सज्ञा के कार्य हैं। वे गो शब्द में किये जाते हैं। इस से यहां पय शब्द की कल्म संज्ञा है][2]। यहां विशेष कल्म संज्ञा रखने के लिये कर्म शब्द के रेफ को लकारादेश "संज्ञा छन्दसो"[3] इस वार्तिक से संज्ञा मान के किया है।

---

१. वस्तुतः पञ्चाल नाम पंजाब का नहीं है। यह देश गंगा के पूर्व में उत्तर से दक्षिण तक विस्तृत था। यु० मी०।

२. हमारा विचार है उपर्युक्त कोष्ठान्तर्गत व्याख्या ठीक नहीं है। कल्म संज्ञा उसी आचार्य ने की है, जिसके मत में क्रमाङ्क २२ की कारिका से प्रधान कर्म में लकारादि का विधान किया है और अप्रधान कर्म में षष्ठी। अतः कल्म संज्ञा बनाने वाले आचार्य के मत में गो आदि अकथित की ही कल्म संज्ञा होती है। यु० मी०।

३. महा० ८ । २ । १८ ॥ यु० मी०।

३०—गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ ॥ अ० १ । ४ । ५२ ॥

गत्यर्थक, बुद्ध्यर्थक, प्रत्यवसानार्थक अर्थात् भोजनार्थक, शब्द-कर्मक और अकर्मक, इन धातुओं का जो णिच् प्रत्यय के पहिले कर्ता है वह णिच् के हुए पश्चात् कर्मसंज्ञक हो। गत्यर्थक—गच्छति ग्रामं देवदत्तो, गमयति ग्रामं देवदत्तम्; याति ग्रामं देवदत्तो, यापयति ग्रामं देवदत्तं यज्ञदत्तः। यहां णिच् के पहिले का जो कर्ता देवदत्त है वह णिच् के पश्चात् कर्म संज्ञक हो के उस से द्वितीया हो जाती है। बुद्ध्यर्थक—जानाति विप्रः शास्त्रम्, ज्ञापयति विप्रं शास्त्रम्; बुद्ध्यते देवदत्तः शास्त्रम्, बोधयति देवदत्तं शास्त्रम्। प्रत्यवसानार्थक—अश्नाति फलानि माणवकः, आशयति फलानि माणवकम्; भुङ्क्ते ओदनं बालकः, भोजयत्योदनं बालकम्। शब्दकर्मक—ब्रूते धर्मं ब्राह्मणो, वाचयति धर्मं ब्राह्मणम्; उपदिशति धर्मं ब्राह्मणः, उपदेशयति धर्मं ब्राह्मणम्। अकर्मक—स्वपिति बालः, स्वापयति धात्री बालम्; पुत्रः शेते, माता पुत्रं शाययति। यहां सर्वत्र जो अणयन्तावस्था में कर्ता है वही णिच् में कर्म हो गया है। इस सूत्र में गत्यर्थादि धातुओं का ग्रहण इसलिये है कि "पचत्योदनं देवदत्तः, पाचयत्योदनं देवदत्तेन" यहां कर्म संज्ञा के न होने से कर्ता में तृतीया विभक्ति होती है। और अणिकर्ता ग्रहण इसलिये है कि "देवदत्तो यज्ञदत्तं गमयति, तमन्यो गमयति देवदत्तेन। यहां णिच् के परे गम धातु का कर्ता है सो दूसरे णिच् में कर्म संज्ञक नहीं होता।

अब आगे इस सूत्र के वार्तिक लिखते हैं।

३१—वा०—दृशेः सर्वत्र ॥ १ । ४ । ५२ ॥

सर्वत्र अर्थात् दोनों पक्षों[1] में दृश धातु का जो अणयन्तावस्था

[1] उपर्युक्त सूत्र के भाष्य में शब्द-कर्म पद के अर्थ में विकल्प उठाया

का कर्ता है वह ण्यन्तावस्था में कर्म संज्ञक होवे। पश्यति रूपतर्कः कार्षापणम्, दर्शयति रूपतर्कं कार्षापणम्। यहां रूपतर्क शब्द की कर्म संज्ञा होती है।

३२–वा०–अदिखादिनीवहीनां प्रतिषेधः ॥१।४।५२॥

अदि, खादि इन दो धातुओं के प्रत्यवसानार्थ होने और नी, वहि इन दो के गत्यर्थक होने से कर्म संज्ञा प्राप्त है इसलिये प्रतिषेध किया है। अद–अत्ति देवदत्तः, आदयति देवदत्तेन। यहां अण्यन्त धातु के कर्ता देवदत्त की कर्म संज्ञा न होने से द्वितीया विभक्ति न हुई।

तथा बहुत आचार्यों का ऐसा मत है कि—

३३–अपर आह–सर्वमेव प्रत्यवसानकार्यमदेर्न भवतीति वक्तव्यं, परस्मैपदमपि। इदमेकमिष्यते—क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्य इति ॥ १ । ४ । ५२ ॥

प्रत्यवसानार्थ धातुओं को जितना कार्य होता है उस में से अद धातु को कुछ भी न हो। तथा निगरणार्थ मान के जो परस्मैपद * प्राप्त है वह भी न हो। अत्ति देवदत्तः, आदयते देवदत्तेन। यहां आत्मनेपद होता है। प्रत्यवसानार्थ का एक कार्य अद धातु को होना चाहिये—इदमेषां जग्धम् †।

है—शब्द जिनकी क्रिया है अथवा शब्द जिनका कर्म है। सर्वत्र शब्द से इन दोनों पक्षों का ग्रहण है। यु० मी०।

* परस्मैपद—"निगरणचलनार्थेभ्यश्च" (अ० १। ३। ८७) इस सूत्र में निगरणार्थ शब्द प्रत्यवसानार्थ का पर्यायवाची है और प्रत्यवसान तथा निगरण इन दोनों का शब्द भेद होने से "परस्मैपदमपि" यह कहा है, नहीं तो प्रत्यवसान के कहने से हो ही जाता।

† (जग्धम्) जहां अद धातु के प्रत्यवसानार्थ होने से अधिकरण

खादति देवदत्तः, खादयति देवदत्तेन। यहां भी अणि के कर्ता देवदत्त शब्द की कर्म संज्ञा न हुई। नी–नयति भारं देवदत्तः, नाययति भारं देवदत्तेन। यहां नी धातु के कर्ता देवदत्त की कर्म संज्ञा न होने से उस में द्वितीया न हुई। वह–वहति भारं देवदत्तः, वाहयति भारं देवदत्तेन। यहां सर्वत्र णिच् में कर्ता की कर्म संज्ञा नहीं होती—परन्तु वह धातु में इतना विशेष है कि—

३४–वा–* वहेरनियन्तृकर्तृकस्य ॥ १ । ४ । ५२ ॥

यहां पूर्व वार्त्तिक से निषेध की अनुवृत्ति चली आती है। नियन्ता अर्थात् सारथि वह जहां धातु का कर्ता न हो, वहीं कर्म संज्ञा का निषेध हो, अन्यत्र नहीं। जैसे—वहति भारं देवदत्तः, वाहयति भारं देवदत्तेन। जहां कोई नियन्ता कर्ता होता है वहां कर्म संज्ञा का प्रतिषेध नहीं होता। यथा वहन्ति बलीवर्दा यवान्, वाहयति बलीवर्दान् यवान् †। यहां कर्म संज्ञा होके द्वितीया विभक्ति हो जाती है।

कारक में क्त प्रत्यय [का] विधान है सो प्रत्यवसान के सब कार्यों के निषेध में इसका भी निषेध पाया था। "एषाम्" यह कर्म में षष्ठी और "जग्धम्" अधिकरण में क्त प्रत्यय है। "इदमेकमिष्यते" इस से निषेध का निषेध किया है।

* पूर्व वार्त्तिक के सामान्य अर्थ में वह धातु के अणि कर्ता की कर्म संज्ञा का प्रतिषेध है। इस वार्तिक से उसी का नियम करते हैं कि वह निषेध, नियन्ता जहां कर्ता हो वहां न लगे।

† यहां [अण्यन्त अवस्था में] प्रेरक हांकने वाले की विवक्षा नहीं है; इसलिये वाहन क्रिया के स्वतन्त्र कर्ता बैल हो गये। [जब उनको हांकने वाले की विवक्षा होती है, तब ण्यन्त में बलीवर्द की कर्म संज्ञा हो जाती है]।

३५–वा–‡ भक्षेरहिंसार्थस्य ॥ १ । ४ । ५२ ॥

यहां भी पूर्व वात्तिक से "प्रतिषेध:" इस पद की अनुवृत्ति चली आती है। जो हिंसार्थ से भिन्न अर्थ में वर्तमान भक्ष धातु [है] उस का अणि में जो कर्ता उसकी णिच् में कर्म संज्ञा न हो। जैसे–भक्षयति पिण्डीं देवदत्तः। भक्षयति पिण्डीं देवदत्तेन। इस वार्तिक में हिंसार्थ का निषेध इसलिये कि "भक्षयति बलीवर्दान् यवान्" खेत के छोटे छोटे जौ बैलों से चराता है। यहां खेत वाले की हिंसा समझी जाती है क्योंकि खेत ही से उसका जीवन है। इससे कर्म संज्ञा का निषेध नहीं हुआ।

३६–वा०–अकर्मकग्रहणे कालकर्मणामुपसंख्यानम् × ॥ १ । ४ । ५२ ॥

जो अकर्मक धातुओं का सूत्र में ग्रहण है वहां कालकर्म वाले धातुओं का भी ग्रहण समझना चाहिये। जैसे—मासमास्ते देवदत्तः, मासमासयति देवदत्तम्। यहां मास प्रथम कर्म है अणि के कर्ता देवदत्त की कर्म संज्ञा होके द्वितीया विभक्ति हो गई है।

३७–हृक्रोरन्यतरस्याम् ॥ ३७ ॥अ० १ । ४ । ५३॥

हृ और कृ धातु का जो अण्यन्तावस्था कर्ता है वह ण्यन्तावस्था में विकल्प करके कर्म संज्ञक हो। जैसे–अभ्यवहारयति सैन्धवान् सैन्धवैर्वा, विकारयति सैन्धवान् सैन्धवैर्वा ❀।

---

‡ यह वार्तिक सूत्र से ही संबन्ध रखता है। भक्ष धातु के प्रत्यवसानार्थं होने से सामान्य अर्थों में भक्ष धातु के अणिकर्ता की कर्म संज्ञा प्राप्त है। सो जहां हिंसा अर्थात् पीड़ा पहुँचाना अर्थ हो वहीं अणिकर्ता की कर्म संज्ञा हो और अहिंसा में निषेध हो जावे।

× कालकर्म वाले धातु अकर्मकों के समान समझे जाते हैं, इसलिये अकर्मकों के साथ इन का उपसंख्यान किया है।

❀ धातुओं के अनेकार्थ होने से कई अर्थों में कर्मसंज्ञा प्राप्त है और

३८–वा०–हृक्रोर्वावचनेऽभिवादिदृशोरात्मनेपद उपसंख्यानम् ॥ १ । ४ । ५३ ॥

जो अभि पूर्वक वद और दृश धातु का अणि में कर्ता है वह ण्यन्तावस्था में कर्म संज्ञक विकल्प करके हो, आत्मनेपद में। जैसे–अभिवदति गुरुं देवदत्तः, अभिवादयते गुरुं देवदत्तेन देवदत्तं वा, पश्यन्ति भृत्या राजानं, दर्शयते भृत्यै राजा, दर्शयते भृत्यान् राजा। यहां अभि पूर्वक वद धातु शब्दकर्मक और दृश धातु बुद्ध्यर्थक है वहां तो पूर्व सूक्त से कर्मसंज्ञा प्राप्त थी, अन्य अर्थ में नहीं। इस वार्तिक से सर्वत्र विकल्प करके हो जाती है। इसी से यह प्राप्ताप्राप्त विभाषा कहाती है।

[३–करण कारक]

३९–साधकतमं करणम् ॥ अ० १ । ४ । ४२ ॥

जो क्रिया की सिद्धि करने में मुख्य साधक हो, वह कारक करण संज्ञक हो। इसका फल—

४०–कर्तृकरणयोस्तृतीया ॥ अ० २ । ३ । १८ ॥

अनभिहित कर्ता और करण कारक में तृतीया विभक्ति हो। कर्ता–जैसे–देवदत्तेन कृतम्, देवदत्तेन क्रियते। देवदत्त ने किया, यहां देवदत्त कर्ता [है]। करण–दात्रेण यवान् लुनाति, परशुना काष्ठं वृश्चति * इत्यादि। दरांति से जवों को काटता और कुल्हाड़े से लकड़ी को काटता है, यहां दरांति और कुल्हाड़ा करण हैं।

कहीं में नहीं। जैसे–अभ्यव और आङ्पूर्वक हृ धातु प्रत्यवसानार्थक है वहां प्राप्त है, अन्यत्र नहीं, तथा विपूर्वक कृधातु शब्दकर्मक और कहीं अकर्मक है वहां प्राप्त, अन्यत्र अप्राप्त। इस प्रकार यह प्राप्ताप्राप्त विभाषा है।

* यहां (लुनाति) खेत का लुनना और (वृश्चति) वृक्ष का

४१–वा०–तृतीयाविधाने प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम् † ॥ २ । ३ । १८ ॥

प्रकृति आदि शब्दों से भी तृतीया विभक्ति हो । प्रकृत्या दर्शनीयः । यह स्वभाव से देखने योग्य है । प्रायेण वैयाकरणः । यह कुछेक व्याकरण भी पढ़ा है इत्यादि । यहां अनभिहित कर्ता करण कारकों के न होने से तृतीया विभक्ति नहीं प्राप्त थी, सो इस वार्तिक से विधान की है । प्रकृति आदि शब्द बहुत हैं, सो अष्टाध्यायी महाभाष्य के पढ़ने से आवेंगे ❀ ।

४२–सहयुक्तेऽप्रधाने ॥ अ० २ । ३ । १९ ॥

सह शब्द युक्त अप्रधान कर्ता कारक में तृतीया विभक्ति होती है । जैसे–पुत्रेण सहागतः पिता । पुत्र सहित पिता आया इत्यादि । यहां पुत्र अप्रधान है उस में तृतीया विभक्ति हो गई प्रधान पिता में न हुई ।

४३–येनाङ्गविकारः ॥ अ० २ । ३ । २० ॥

जिस अङ्ग अवयव से शरीर का विकार जाना जाय, उस अवयव में तृतीया विभक्ति हो । जैसे–शिरसा खल्वाटः, अक्ष्णा काणः । यह शिर से खल्वाट और आंख से काणा है इत्यादि ।

४४–इत्थंभूतलक्षणे ॥ अ० २ । ३ । २१ ॥

काटना इन क्रियाओं के मुख्य साधन दात्र और कुल्हाड़ी हैं, इन के बिना उक्त क्रिया कदाचित् नहीं हो सकती ।

† यहां से ले के तृतीया विभक्ति विधायक प्रकरण में जो कुछ सूत्र वार्तिक हैं वे अपूर्व विधायक इसलिये समझे जाते हैं कि उन में तृतीया किसी से प्राप्त नहीं है । ❀ प्रकृति आदि शब्दों का संग्रह गणपाठ में (२१वां गण पृष्ठ १२) में देखो । यु० मी० ।

इत्थंभूत अर्थात् इस प्रकार का वह है, इस अर्थ में वर्तमान प्रातिपदिक से तृतीया विभक्ति होवे। जैसे–अपि भवान् मेखलया ब्रह्मचारिणमद्राक्षीत्, धर्मेण सुखम्, पापेन दुःखम् इत्यादि। यहां मेखला शब्द से ब्रह्मचारी का स्वरूप, धर्म से सुख और पाप से दुःख जाना जाता है। इत्थंभूत से भिन्न में तृतीया विभक्ति न हो। जैसे–वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत् इत्यादि।

४५–संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि * ॥४५॥अ०२।३।२२॥

संपूर्वक ज्ञा धातु के अनभिहित कर्म में तृतीया विभक्ति विकल्प कर के होवे, पक्ष में द्वितीया हो। मात्रा संजानीते बालः, मातरं संजानीते बालः।

४६–हेतौ ॥ ४६ ॥ अ० २ । ३ । २३ ॥

हेतुवाची शब्द में तृतीया विभक्ति हो। विद्यया यशः †। विद्या से कीर्त्ति होती और—धनेन दानम्। धन से दान होता है इत्यादि।

४७–वा०–निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां प्रायदर्शनम्॥४७॥

निमित्त कारण और हेतु इन तीन शब्दों और इन के सम्बन्धी शब्दों से सब विभक्ति बहुल करके होती हैं। जैसे–[निमित्त–] किं निमित्तं वसति, पठति, गच्छति, आयाति, करोति, तिष्ठति, इत्यादि। केन निमित्तेन, कस्मै निमित्ताय, कस्मान्निमित्तात्, कस्य

---

* यहां अनभिहित कर्म में द्वितीया ही प्राप्त है तृतीया नहीं, इस कारण यह अप्राप्त विभाषा है। और उसी द्वितीया का अपवाद यह तृतीया समझी जाती है। पक्ष में द्वितीया भी होती है।

† हेतु उसको कहते हैं कि जिस के साथ जिसका प्रयोग हो उसका निमित्त कारण समझा जावे, यहां भी विद्या यश का निमित्त कारण

निमित्तस्य, कस्मिन्निमित्ते च। कारण-किङ्कारणम्, केन कारणेन, कस्मै कारणाय, कस्मात् कारणात्, कस्य कारणस्य, कस्मिन् कारणे च वसति। हेतु-को हेतुः, कं हेतुम्, केन हेतुना, कस्मै हेतवे, कस्माद्धेतोः, कस्य हेतोः, कस्मिन् हेतौ च वसतीत्यादि ‡।

४८-अकर्तर्यृणे पञ्चमी ॥ ४८ ॥ अ० २।३।२४ ॥

ऋण अर्थ में कर्ता भिन्न हेतु वाची शब्दों से पञ्चमी विभक्ति हो। जैसे-शताद् बद्धः इत्यादि। ऋणी को सौ रुपये ऋण होने के कारण ऋण वाले ने बांधा। यहां 'अकर्तरि' ग्रहण इसलिये है कि-"शतेन बन्धितः" यहां सौ रुपयों से बंधवाया। इस प्रयोजक कर्ता की विवक्षा होने से पञ्चमी विभक्ति न हुई।

४९-विभाषा गुणेऽस्त्रियाम् ॥ अ० २। ३। २५ ॥

स्त्रीलिङ्ग को छोड़ के पुलिङ्ग वा नपुंसक लिङ्ग में वर्तमान जो गुणवाची हेतु शब्द उससे विकल्प करके पञ्चमी विभक्ति हो। जैसे—मौढ्याद् बद्धः, मौढ्येन बद्धः इत्यादि। यह मूर्ख जन अपनी मूर्खता से आप ही बंधा है। यहां स्त्रीलिङ्ग का निषेध इसलिये किया है कि "प्रज्ञया पूजित" इत्यादि यहां पञ्चमी विभक्ति न हो।

५०-षष्ठी हेतुप्रयोगे ॥ अ० २। ३। २६ ॥

हेतु शब्द के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति हो। जैसे—विद्याया हेतोर्गुरुकुले वसति इत्यादि। विद्या-ग्रहण के हेतु से यह ब्रह्मचारी गुरुकुल में बसता है।

५१-सर्वनाम्नस्तृतीया च ॥ अ० २। ३। २७ ॥

‡ निमित्त कारण और हेतु शब्दों से सब वचन, यथायोग्य सब कारक और क्रिया भी होती है। परन्तु इस बचन का मुख्य प्रयोजन भाषा लोगों के प्रयोग विषय में साधुत्व दर्शाना है।

सर्वनाम वाची विशेषण सहित हेतु शब्द के प्रयोग में तृतीया और षष्ठी विभक्ति हों। जैसे—केन हेतुना कस्य हेतोर्वा वसति इत्यादि। यह जन किस हेतु से बसता है।

अब करण संज्ञा में जो विशेष सूत्र हैं सो लिखते हैं—

५२—दिवः कर्म च ॥ अ० १ । ४ । ४३ ॥

* पूर्व सूत्र से नित्य करण संज्ञा प्राप्त थी, उसका बाधक यह यह सूत्र है। जो दिवु धातु के प्रयोग में साधकतम अर्थात् क्रिया की सिद्धि में मुख्य हेतु कारक है वह कर्म संज्ञक और चकार से करण संज्ञक भी हो। जैसे—अक्षानक्षैर्वा दीव्यति इत्यादि। † पासों से खेलता है।

५३—परिक्रयणे संप्रदानमन्यतरस्याम् ॥अ० १।४।४४॥

यहां भी "साधक०" (कार० ३९) इस पूर्व सूत्र से नित्य करण संज्ञा पाती थी, सो इस सूत्र से करण और पक्ष में संप्रदान संज्ञा की है। परिक्रयण अर्थात् जो सब प्रकार खरीदने अर्थ में साधकतम कारक है, वह संप्रदान संज्ञक विकल्प करके हो और पक्ष में करण संज्ञक हो। जैसे—शताय शतेन वा परिक्रीणाति इत्यादि। सौ रुपयों से खरीदता है।

---

* (पूर्वसूत्र) साधकतमं करणम् (सूत्र ३९)।

† इत्यादि सूत्रों के उदाहरणों में केवल करण संज्ञा हो के तृतीया विभक्ति प्राप्त थी, उसके ये सूत्र अपवाद हैं। बहुव्यापक उत्सर्ग और अल्प व्यापक अपवाद संज्ञक [होते हैं] उत्सर्ग सूत्रों ही के विषय में अपवाद सूत्र प्रवृत्त होते और अपवाद सूत्रों के विषय में उत्सर्ग सूत्र प्रवृत्त नहीं होते, किन्तु अपवाद विषयों को छोड़ के उत्सर्ग सूत्रों की प्रवृत्ति होती है। ऐसा सर्वत्र समझना चाहिये [देखो पारिभाषिक, परिभाषा ५५—५७]

[४—सम्प्रदान कारक]

५४—कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् ॥अ०१।४।३२॥

अत्यन्त इष्ट पदार्थ समझ के जिसके लिये देने का अभिप्राय किया जाय वह कारक संप्रदान संज्ञक होवे। इसका फल—

५५—चतुर्थी संप्रदाने ॥ अ० २ । ३ । १३ ॥

संप्रदान कारक में चतुर्थी विभक्ति हो। जैसे—शिष्याय विद्यां ददाति * इत्यादि। आचार्य शिष्य को विद्या देता है।

५६—वा०—† चतुर्थीविधाने तादर्थ्य उपसंख्यानम् ॥ २ । २ । १३ ॥

तादर्थ्ये अर्थात् जिस कार्य के लिये कारणवाची शब्द का प्रयोग किया हो, उस कार्यवाची शब्द से चतुर्थी विभक्ति होवे। जैसे—यूपाय दारु, कुण्डलाय हिरण्यम् इत्यादि। यह खंभा के लिये काष्ठ और कुण्डल के लिये सोना है।

५७—वा०—क्लृपि-संपद्यमाने ॥ २ । २ । १३ ॥

जो क्लृपि धातु का उत्पन्न होने वाला कारक है उसमें चतुर्थी हो। जैसे—मूत्राय कल्पते यवागू, विद्यायै कल्पते बुद्धिमान् इत्यादि। मूत्र के उत्पन्न करने में यवागू और विद्या पढ़ने के लिये बुद्धिमान् समर्थ होता है।

५८—वा०—उत्पातेन ज्ञाप्यमाने ॥ २ । २ । १३ ॥

---

* यहां अत्यन्त इष्ट पदार्थ विद्या है इसीसे उसकी कर्म संज्ञा हो के द्वितीया हुई है। और विद्या जिस शिष्य के लिये देने का अभिप्राय है उसी की संप्रदान संज्ञा होकर चतुर्थी होती है।

† यहां से आगे चतुर्थी विधान प्रकरण में जितने सूत्र वार्तिक लिखेंगे,

आकाश से बिजली के चमकने और ओले पत्थर आदि गिरने को उत्पात कहते हैं। उस उत्पात से जो बात जानी जावे वहां चतुर्थी विभक्ति होवे। जैसे—वाताय कपिला विद्युदातपायातिलोहिनी। कृष्णा सर्वविनाशाय दुर्भिक्षाय सिता भवेत्॥ पीली बिजली जो चमके तो वायु अधिक चले, इत्यादि।

५६—वा०—हितयोगे च॥ २। २। १३॥

हित शब्द के योग में चतुर्थी विभक्ति हो। जैसे—हितमरोचकिने पाचनम्, इत्यादि। जिस की रुचि भोजन पर न हो उसके लिये पाचन औषध हितकारी है।

६०—क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः॥ अ० २। ३। १४॥

अनभिहित कर्म कारक में द्वितीया विभक्ति पाती थी, उसका अपवाद यह सूत्र है। जहां क्रिया के लिये क्रिया हो, वहां अप्रयुज्यमान धातु के अनभिहित कर्म कारक में चतुर्थी विभक्ति हो। जैसे—वृकेभ्यो व्रजति, वृकान् हन्तुं व्रजति इत्यादि। भेड़ियों को मारने जाता है, यहां जो वृकों को मारना क्रिया है सो हन धातु अप्रयुज्मान है। यहां कर्म ग्रहण इसलिये है कि—"वृकेभ्यो व्रजत्यश्वेन" अश्व शब्द में चतुर्थी न हो। और स्थानिग्रहण इसलिये है कि—"वृकान् हन्तुं व्रजति" यहां प्रयुज्यमान के होने से चतुर्थी विभक्ति नहीं हुई।

६१—तुमर्थाश्च भाववचनात्॥ अ० २। ३। १५॥

जहां अप्रयुज्यमान क्रियार्थोपपद धातु के कर्म का वाची तुमर्थ-

इनमें संप्रदान संज्ञा के न होने से चतुर्थी प्राप्त नहीं, क्योंकि यहां कर्म से किसी का अभिप्राय सिद्ध नहीं किया जाता। इसलिये यह सब प्रकरण है।

भाववचन प्रातिपदिक हों, वहां उस से चतुर्थी विभक्ति हो। जैसे—इष्टये व्रजति ❀, इष्टिं कर्तुं व्रजति इत्यादि। पौर्णमासी आदि में होम करने को जाता है। यहां तुमर्थ ग्रहण इसलिये है कि—'पाकं करोति' यहां चतुर्थी न हो।

६२—नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च ॥

अ० २। ३। १६॥

नमस्, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् और वषट्, इन शब्दों के योग में चतुर्थी विभक्ति होवे। नमस्ते रुद्र मन्यवे, स्वस्ति शिष्याय, अग्नये स्वाहा, स्वधा पितृभ्यः, अलं मल्लो मल्लाय, वषडिन्द्राय इत्यादि †

६३—वा—अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणं कर्तव्यम् ॥

२। ३। १६॥

अलं शब्द से सामर्थ्यवाचक का ग्रहण होना चाहिये। क्योंकि ‡

❀ यहां इष्टि शब्द क्रियार्थोपपद करोति धातु का भाववचन कर्म है, और व्रजन क्रिया इष्टि संपादन के लिये है इसी से इसको क्रियार्था क्रिया कहते हैं।

† प्राण के लिये नमः = अन्न। अग्नि में स्वाहा = संस्कृत हवि। पितरों अर्थात् पिता आदि ज्ञानियों से स्वधा = अर्थात् अपने योग्य सुशिक्षा। मल्ल को जीतने में मल्ल ही समर्थ। इन्द्र बिजली की विद्या ग्रहण करने के लिये उत्तम क्रिया अच्छी होती है।

‡ पूर्व सूत्र में जो अलं शब्द पढ़ा है उसी का शेष यह वार्तिक है। अलं शब्द के चार अर्थ हैं—भूषण, पर्याप्ति अर्थात् सामर्थ्य, समाप्ति और निषेध। इन सब अर्थों में इसके योग में चतुर्थी प्राप्त थी, सो नियम हो गया कि अलं पर्याप्ति अर्थ में हो तो अथवा पर्याप्त्यर्थवाचक अन्य शब्दों के योग में भी हो जावे।

'अलं कुरुते कन्याम्' यहां भूषण अर्थ में चतुर्थी विभक्ति न हो और 'प्रभुर्मल्लो मल्लाय' 'प्रभवति मल्लो मल्लाय' यहां अलं के पर्य्यायवाची प्रभु और प्रभवति शब्द के योग में भी चतुर्थी विभक्ति हो जावे।

६४—मन्यक्ष कर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु ॥
अ० २ । ३ । १७ ॥

इस सूत्र में मन्य निर्देश दिवादि गण के मन धातु का किया है। जहां मन्य धातु के अप्राणि वाची अनभिहित कर्म में तिरस्कार अर्थ विदित होता हो तो वहां विकल्प कर के चतुर्थी विभक्ति हो, पक्ष में द्वितीया। त्वां तृणं मन्ये, त्वां तृणाय मन्ये इत्यादि। मैं तुझ को तृण की तुल्य मानता हूं, यह तिरस्कार है। यहां दिवादि विकरण के ग्रहण से "त्वां तृणं मन्वे" यहां चतुर्थी नहीं होती। यहां मन्य कर्म ग्रहण इसलिये है कि "त्वां तृणं जानामि" यहां चतुर्थी न हो। अनादर ग्रहण इसलिये है कि "वाचं मन्ये सरस्वतीम्" यहां चतुर्थी न हो और अप्राणि ग्रहण इसलिये है कि "काकं मन्ये त्वाम्" इत्यादि में चतुर्थी विभक्ति न हो।

६५–वा०–अनावादिष्विति वक्तव्यम् ॥२।३।१७॥

जो इस सूत्र में अप्राणी का ग्रहण किया है उसके स्थान में वार्त्तिकरूप "अनावादिषु" ऐसा न्यास करना चाहिये। क्योंकि कहीं २ प्राणी वाची मन्य धातु के कर्म में भी चतुर्थी होती है। जैसे—न त्वा श्वानं मन्ये, न त्वा शुने मन्ये इत्यादि। मैं तुझे कुत्ते के समान भी नहीं मानता।

क्ष यहां मन्य धातु से अनभिहित कर्म में केवल द्वितीया विभक्ति ही पाती है, उसी का बाधक यह सूत्र है, और इसीलिये यह अप्राप्त विभाषा कहाती है।

[1]संप्रदान संज्ञा में कर्म ग्रहण इसलिये है कि "स्नातकाय कन्यां ददाति" इत्यादि। ब्रह्मचर्यव्रत से पूर्णविद्या पढ़े हुए सुशील पुरुष को कन्या देता है। यहां कन्या की संप्रदान संज्ञा न हो जावे। "यं" और "स" इन दो शब्दों का ग्रहण इसलिये है कि—अप्राप्त की संप्रदान संज्ञा न हो जावे। अर्थात् दिया था, देता है और देगा, अन्यथा अभि प्र न हों तो वर्तमान काल ही में संप्रदान संज्ञा होती, अन्यत्र नहीं।

६६—वा०—कर्मणः करणसंज्ञा वक्तव्या, संप्रदानस्य च कर्मसंज्ञा ॥ १ । ४ । ३२ ॥

इस वार्तिक से कर्म की तो करण और संप्रदान की कर्म संज्ञा होती है। जैसे—पशुना रुद्रं यजते, पशुं रुद्राय ददातीत्यर्थः इत्यादि। रुद्र अर्थात् मध्य[2] विद्वान् को पशु देता है। यहां पशु तो कर्म है, उस की करण संज्ञा हो के तृतीया विभक्ति हो गई। रुद्र नाम किसी मध्यम विद्वान् को पशु देता है।

६७—रुच्यर्थानां प्रीयमाणः ॥ अ० १ । ४ । ३३ ॥

जो रुच्यर्थक धातुओं के प्रयोग में तृप्त होने वाला कारक है वह संप्रदान संज्ञक हो। जैसे—ब्रह्मचारिणे रोचते विद्या इत्यादि। ब्रह्मचारी अर्थात् नियमपूर्वक विद्या पढ़ने वाला मनुष्य विद्या से प्रसन्न

---

१. यह "कर्मणा यमभिप्रैति" (का० ५४) सूत्र की व्याख्या का शेष भाग है। यु० मी०।

२. महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थों में वसु का अर्थ २४ वर्ष तक अध्ययन करने वाला, रुद्र का अर्थ ४४ वर्ष तक अध्ययन करने वाला और आदित्य का अर्थ ४८ वर्ष तक विद्याध्ययन करने वाला किया है। अतः यहां रुद्र का अर्थ मध्य विद्वान् लिखा है। यु० मी०।

और तृप्त होता है। यहां प्रीयमाण ग्रहण इसलिये है कि विद्या शब्द की संप्रदान संज्ञा न हो।

६८—श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः ॥अ० १।४।३४॥

श्लाघ, ह्नुङ्, स्था और शप्, इन धातुओं के प्रयोग में जिस को जनाने की इच्छा की जावे वह कारक संप्रदान संज्ञक होवे। जैसे—पुत्राय श्लाघते, जाराय ह्नुते, विद्यायै तिष्ठते, दुष्टाय शपते ❀ इत्यादि। यह स्त्री, पुत्र की प्रशंसा, व्यभिचारी को दूर करती, विद्या के लिये खड़ी और दुष्ट को शाप देती है। यहां ज्ञीप्स्यमान ग्रहण इसलिये है कि जिस को जनावे उसी की संप्रदान संज्ञा होवे, धर्म की न हो जाय। जैसे—पिता पुत्राय धर्मं श्लाघते इत्यादि।

६९—धारेरुत्तमर्णः ॥ अ० १। ४। ३५ ॥

जो किसी को ऋण देवे वह उत्तमर्ण कहाता है। जो णयन्त धृ धातु के प्रयोग में उत्तमर्ण कारक है वह संप्रदान संज्ञक हो। जैसे—देवदत्ताय शतं सहस्रं वा धारयति इत्यादि। देवदत्त के सौ वा हजार रुपैये ऋण यज्ञदत्त धरण करता है। यहां देवदत्त ऋण का देने वाला होने से उत्तमर्ण और यज्ञदत्त लेने वाला होने से अधमर्ण कहाता है। यहां शेष कारक के होने से षष्ठी विभक्ति पाती थी, उस का अपवाद संप्रदान संज्ञा हो के चतुर्थी विभक्ति हो जाती है। उत्तमर्ण ग्रहण इसलिये है कि उस सौ वा हजार की संप्रदान संज्ञा न हो जाय।

७०—स्पृहेरीप्सितः ॥ अ० १। ४। ३६ ॥

जो स्पृह धातु के प्रयोग में ईप्सित अर्थात् जिस पदार्थ के ग्रहण की इच्छा होती है वह संप्रदान संज्ञक हो। जैसे—धनाय स्पृहयति

❀ यहां दुष्ट को पुकारना है वह उसी को जनाया जाता है, इसलिये वह संप्रदान है।

इत्यादि। भोगी मनुष्य धन मिलने की इच्छा करता है। यहां धन उस को इष्ट है, इस से धन की संप्रदान संज्ञा हो के चतुर्थी विभक्ति हो गई। ईप्सित ग्रहण इसलिये है कि भोग के कर्त्ता की संप्रदान संज्ञा न हो जाय।

७१–† क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः ॥

अ० १। ४। ३७॥

क्रुध, द्रुह, ईर्ष्य, असूय, इन के तुल्यार्थ धातुओं के प्रयोग में जिस के प्रति कोप किया जाय, वह कारक संप्रदान संज्ञक हो। जैसे—क्रुध–दुष्टाय क्रुध्यति, द्रुह–शत्रवे द्रुह्यति, ईर्ष्य–सपत्न्या ईर्ष्यति, असूय–विदुषेऽसूयति; राजा दुष्ट पर क्रोध, शत्रु से द्रोह, स्वपति की दूसरी स्त्री से अप्रीति और मूर्ख जन विद्वान् की निन्दा करता है। यहां जिस के प्रति कोप हो इस का ग्रहण इसलिये है कि "भिक्षुको भिक्षुकमीर्ष्यति" इत्यादि में सम्प्रदान संज्ञा न हो।

७२–क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म ॥ अ० १। ४। ३८॥

पूर्व से सम्प्रदान संज्ञा प्राप्त थी, उस का बाधक यह सूत्र है। है। उपसर्ग युक्त क्रुध और द्रुह धातु के प्रयोग में जिस के प्रति कोप हो वह कारक कर्म संज्ञक हो। जैसे—दुष्टमभिक्रुध्यति, अभिद्रुह्यति वा इत्यादि। यहां उपसर्ग युक्त का ग्रहण इसलिये है कि "दुष्टाय क्रुध्यति, द्रुह्यति वा" इत्यादि में कर्म संज्ञा न हो जाय।

७३–राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः ॥ अ० १। ४। ३९॥

राध और ईक्ष धातु के प्रयोग में जिस का विविध प्रकार का प्रश्न हो वह कारक संप्रदान संज्ञक हो। जैसे—शिष्याय विद्यां राध्नोति, ईक्षते वा गुरुः इत्यादि। आचार्य विद्यार्थी के लिये विद्या

† यह सूत्र कर्मसंज्ञा का अपवाद है।

को सिद्ध और प्रत्यक्ष कराता है। यहां राध और ईक्ष धातु का ग्रहण इसलिये है कि इनके योग से अन्यत्र संप्रदान संज्ञा न हो। "यस्य" ग्रहण इसलिये है कि विप्रश्न की संप्रदान संज्ञा न हो जावे।

७४-प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता ॥अ० १।४।४०॥

जो प्रति और आङ पूर्वक श्रु धातु के प्रयोग में पूर्व का कर्ता कारक हो वह संप्रदान संज्ञक होवे। जैसे—पूर्वं देवदत्तो विद्यां याचते, देवदत्ताय विद्यां प्रतिशृणोति, आशृणोति वा विद्वान् इत्यादि। प्रथम देवदत्त विद्या को चाहता है, उस को विद्वान् सुनाता है। "पूर्वस्य" ग्रहण इसलिये है कि विद्वान् की संप्रदान संज्ञा न हो जावे। यहां "प्रति" और "आङ्" का ग्रहण इसलिये है कि ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा और आरम्भ से अन्त तक पढ़ना और पढ़ाना चाहिये।

७५-अनुप्रतिगृणश्च ॥ अ० । १ ४ । ४१ ॥

जो अनु और प्रति पूर्वक गृ धातु के प्रयोग में पूर्व का कर्ता कारक हो तो वह संप्रदान संज्ञक हो। जैसे—शान्ताय विद्यामनुगृणाति, प्रतिगृणाति वा इत्यादि। शान्तिमान् विद्यार्थी के लिये विद्या का उपदेश करता [है]। इस सूत्र में चकार पूर्व के कर्ता की अनुवृत्ति के लिये है। यह सम्प्रदान कारक पूरा हुआ।

५–[अपादानकारक]

७६-ध्रुवमपायेऽपादानम् ॥ अ० १ । ४ । २४ ॥

ध्रुव उसको कहते हैं कि जो पदार्थों के पृथक् होने में निश्चल रहे, वह कारक अपादान संज्ञक हो। इसका फल—

७७-अपादाने पञ्चमी ॥ अ० २ । ३ । २८ ॥

अपादान कारक में पञ्चमी विभक्ति हो। जैसे-ग्रामादागच्छति, वृक्षात् पर्णं पतति इत्यादि। ग्राम से मनुष्य आता है, वृक्ष से पत्ते

गिरते हैं। यहां ग्राम और वृक्ष निश्चल हैं, उन में पञ्चमी हो जाती है।

(प्रश्न) जहां वियोग के बीच में दोनों चलायमान हों वहां किस की अपादान संज्ञा समझनी चाहिये। जैसे—रथात् प्रवीतात् पतितः, धावतस्त्रस्ताद् वाऽश्वात् पतितः। भागते हुए रथ से गिरा, भागते वा डरते हुए घोड़े से गिरा। यहां रथ और घोड़े की अपादान संज्ञा नहीं होनी चाहिये, क्योंकि वे तो चलायमान हैं और गिरा हुआ मनुष्य निश्चल होता है।

(उत्तर) जिस रथ वा घोड़े के स्थल पीठ से गिरता है वह निश्चल है उसकी अपादान संज्ञा होती है।

७८—वा०—पञ्चमीविधाने ल्यब्लोपे कर्मण्युपसंख्यानम् ॥ २। ३। २८॥

जहां ल्यबन्त क्रिया का लोप हो वहां उसके कर्म में पञ्चमी विभक्ति हो। जैसे—*प्रासादात् प्रेक्षते = प्रासादमारुह्य प्रेक्षते। यहां ल्यबन्त आरुह्य क्रिया का लोप हुआ है उस के प्रसाद कर्म में पञ्चमी विभक्ति होती है।

७९—वा०—अधिकरणे च ॥ २। ३। २८ ॥

जो ल्यबन्त क्रिया का लोप हो तो उस के अधिकरण में पञ्चमी विभक्ति हो। जैसे—आसनात् प्रेक्षते, आसनमुपविश्य प्रेक्षते, शयनात् प्रेक्षते इत्यादि; आसन और शय्या पर बैठके देखता है। यहां शयन और आसन उपविश्य क्रिया के अधिकरण हैं। उन में सप्तमी की प्राप्ति होने से उसी का यह अपवाद है।

८०—वा०—† प्रश्नाख्यानयोश्च ॥ २। ३। २८ ॥

---

* यहां अपादान संज्ञा के न होने से पञ्चमी किसी सूत्र से प्राप्त नहीं थी, किन्तु कर्म में द्वितीया प्राप्त थी, उस का यह अपवाद है।

† यहां से ले के आगे इस पञ्चमी विधान प्रकरण में जितने सूत्र

प्रश्न और आख्यान वाची शब्द से पञ्चमी विभक्ति हो। जैसे—कुतो भवान्? पाटलिपुत्राद्। यहां 'कुत' शब्द में प्रश्न वाची होने पाटलिपुत्र शब्द में आख्यान के होने से पञ्चमी विभक्ति हुई है।

८१—वा०—यतश्चाध्वकालनिर्माणम्॥ २। ३। २८॥

जहां से मार्ग और काल का परिमाण किया जाय वहां पञ्चमी विभक्ति हो। मार्गनिर्माण—जैसे—गवीधुमतः सांकाश्यं चत्वारि योजनानि, गवीधुमान् नगर से सांकाश्य नगर चार योजन = सोलह कोश दूर है। यहां गवीधुमान् से मार्ग का परिमाण होने से वहां पञ्चमी विभक्ति हो गई। कालनिर्माण—कार्त्तिक्या आग्रहायणी मासे। [कार्तिकी पूर्णिमा से आग्रायणी पूर्णिमा एक मास पर आती है] यहां कार्त्तिकी शब्द में पञ्चमी विभक्ति हो गई है।

८२—वा०—तद्युक्तात् काले सप्तमी॥ २। ३। २८॥

जो काल के निर्माण में पञ्चमी विभक्ति की है उससे उत्तर कालवाची शब्द से सप्तमी विभक्ति हो। जैसे—कार्त्तिक्या आग्रहायणी मासे। यहां मास शब्द में सप्तमी हुई है।

८३—वा०—अध्वनः प्रथमा च॥ २। ३॥

मार्ग के निर्माण में जो पञ्चमी विभक्ति की है उस से उत्तर मार्ग वाची शब्द से प्रथमा और सप्तमी दोनों विभक्ति हों जैसे—गवीधुमतः सांकाश्यं चत्वारि योजनानि, गवीधुमतः सांकाश्यं चतुर्षु योजनेषु। यहां मार्ग वाची योजना शब्द से प्रथमा और सप्तमी विभक्ति हुई हैं।

८४—अन्यारादितरर्त्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते॥

अ० २। ३। २९॥

वार्तिक लिखे हैं, वे सब अपूर्व विधायक समझने चाहियें, क्योंकि वहां किसीसे कोई विभक्ति का विधान नहीं किया है।

अन्य, आरात्, इतर, ऋते, दिशावाची शब्द, अञ्चूत्तरपद, आच् और आहि प्रत्ययान्त अव्यय, इन शब्दों के योग में पञ्चमी विभक्ति होवे। जैसे, अन्य–अन्यो देवदत्ताद्यज्ञदत्तः, आरात्–आराच्छूद्राद् रजकः, इतर–स्वस्मादितरं न गृह्णीयात्, ऋते–ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः, दिग्वाचीशब्द–पूर्वो ग्रामात् कूपः, अञ्चूत्तरपद–प्राग्ग्रामात् तडागम्, आच्–दक्षिणा कूपाद् वृक्षः, आहि–दक्षिणाहि ग्रामान्नदी इत्यादि। यहां दिक् शब्द के ग्रहण अञ्चूत्तरपद के उदाहरण भी सिद्ध हो जाते, फिर अञ्चूत्तरपद ग्रहण से इसलिये है कि आगे के सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्राप्त है उस को बाध कर पञ्चमी ही हो जावे।

८५–षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन ॥ अ० २ । ३ । ३० ॥

अतसुच् प्रत्ययान्त शब्दों के अर्थों में वर्तमान जो अव्यय शब्द है, उस के योग में षष्ठी विभक्ति हो। जैसे–दक्षिणतो ग्रामस्य वाटिका, उपरि ग्रामस्य गोशाला इत्यादि। यहां ग्राम शब्द से षष्ठी विभक्ति हुई है।

८६–एनपा द्वितीया ॥ अ० २ । ३ । ३१ ॥

अतसर्थ प्रत्ययों में एनप् प्रत्यय के योग में पूर्व सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी, उस का अपवाद यह सूत्र है कि एनप् प्रत्ययान्त अव्यय के योग में द्वितीया हो। जैसे–दक्षिणेन ग्रामं मुञ्जाः इत्यादि। ग्राम से दाहिनी ओर मूंज का वन है।

८७–पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् ॥

अ० २ । ३ । ३२ ॥

पृथक्, विना, नाना, इन तीन अव्यय शब्दों के योग में विकल्प कर के तृतीया विभक्ति हो, पक्ष में पञ्चमी। जैसे—पृथक् स्थानेन, पृथक् स्थानात्; विना घृतेन, विना घृतात्; नाना पदार्थेन, नाना पदार्थात्। यहां जो सिद्धान्तकौमुदी में द्वितीया विभक्ति की अनु-

वृत्ति कर के उदाहरण दिये हैं, वे इसी सूत्र के महाभाष्य से विरुद्ध होने से अशुद्ध हैं।

८८—करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्ववचनस्य ॥ अ० २ । ३ । ३३ ॥

करण कारक में वर्तमान जो अद्रव्य वाची स्तोक, अल्प, कृच्छ्र कतिपय शब्द उन से तृतीया और पञ्चमी विभक्ति हों। जैसे—स्तोकेन स्तोकाद् वा मुक्तः, अल्पेनाल्पाद्वा मुक्तः, कृच्छ्रेण कृच्छ्राद्वा मुक्तः, कतिपयेन कतिपयाद्वा मुक्तः इत्यादि, थोड़े, किंचित्, कष्ट और कुछ दिनों में छूट गया। यहां असत्व वचन का ग्रहण इसलिये है कि "अल्पेन जलेन तृप्तः" थोड़े जल से तृप्त हुआ, इत्यादि में पञ्चमी विभक्ति न हो। यहां करण ग्रहण इसलिये है कि "अल्पं त्यजति" थोड़े को छोड़ता है इत्यादि में तृतीया पञ्चमी विभक्ति न हों।

८९—दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम् ॥ अ० २।३।३४॥

दूर और समीपवाची और इन के पर्यायवाची शब्दों के योग में विकल्प कर के षष्ठी और पक्ष में पञ्चमी हों। जैसे दूरं विप्रकृष्टं वा ग्रामस्य, दूरं विप्रकृष्टं वा ग्रामाद् वनम्; अन्तिकं समीपं वा ग्रामस्य ग्रामाद्वाऽऽरामाः इत्यादि। ग्राम के दूर जंगल और समीप बाग हैं। यहां विकल्प की अनुवृत्ति इसलिये है कि पक्ष में पञ्चमी विभक्ति हो जावे।

९०—दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च ॥ अ० २।३।३५ ॥

दूर और समीप वाची तथा इन के पर्याय शब्दों द्वितीया विभक्ति हो। चकार से विकल्प करके षष्ठी और पञ्चमी भी हो। दूरं दूरस्य दूराद्वा, विप्रकृष्टं विप्रकृष्टस्य विप्रकृष्टाद्वा ग्रामस्य पर्वताः, अन्तिकमन्तिकस्यान्तिकाद्वा ग्रामस्य शिरीषाः, समीपं समीपस्य समीपाद्वा ग्रामस्य वाटिकाः इत्यादि।

अब अपादान संज्ञा में जो विशेष सूत्र हैं उन्हें लिखते हैं।

९१–भीत्रार्थानां भयहेतुः ॥ अ० १ । ४ । २५ ॥

जो भयार्थ और रक्षार्थ धातुओं के प्रयोग में भय का हेतु कारक है, उस की अपादान संज्ञा हो। जैसे—वृकेभ्यो बिभेति, वृकेभ्य उद्विजते; चोरेभ्यस्त्रायते, चोरेभ्यो रक्षति ❀ इत्यादि। भेड़ियों से डरता और चोरों से रक्षा करता है। यहां भय हेतु का ग्रहण इस लिये है कि "गृहे बिभेति, गृहे त्रायते" इत्यादि में पञ्चमी विभक्ति न हो।

९२–पराजेरसोढः ॥ अ० १ । ४ । २६ ॥

परापूर्वक जि धातु के प्रयोग में असोढ अर्थात् जिसको न सह सके वह कारक अपादान संज्ञक हो। जैसे—अध्ययनात् पराजयते, बलवतो धर्मात्मनो निर्बलोऽधर्मी पराजयते इत्यादि। यहां असोढ ग्रहण इसलिये है कि "शत्रून् पराजयते" इत्यादि में अपादान संज्ञा हो कर पञ्चमी न हो।

९३–वारणार्थानामीप्सितः ॥ अ० १ । ४ । २७ ॥

वारण उसको कहते कि कुछ काम करते हुए को वहां से हटा देना। वारणार्थक धातुओं के प्रयोग में जो अत्यन्त इष्ट कारण है उसकी अपादान संज्ञा हो। जैसे—सस्येभ्यो गां वारयति, निवर्त्तयति, निषेधति वा इत्यादि। धान्य के खेतों से गौओं को हटाता है, इस कारण खेत अत्यन्त इष्ट हुए। यहां ईप्सित ग्रहण इसलिये है कि "गोष्ठे गां वारयति" इत्यादि में अपादान संज्ञा न हो।

❀ यहां वृक और चोर भय के हेतु हैं। इस कारण उनकी अपादान संज्ञा हो कर पञ्चमी विभक्ति होती है।

९४-अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति ॥ अ० १।४।२८ ॥

अन्तर्धि अर्थात् छिप जाने अर्थ में, जिस से ऐसी इच्छा करे कि मुझको वह न देखे वह कारक अपादान संज्ञक हो। जैसे—उपाध्यायाद् बालोऽन्तर्धत्ते इत्यादि। पढ़ाने हारे से लड़का छिपता है यहां अन्तर्धि ग्रहण इसलिये है कि "दुष्टान्न दिदृत्तते" इत्यादि में अपादान संज्ञा न हो। इच्छति ग्रहण इसलिये है कि देखने की इच्छा न हो और सामने से दिखाता हो तो भी अपादान संज्ञा न हो।

९५-आख्यातोपयोगे ॥ अ० १ । ४ । २९ ॥

जो उपयोग अर्थात् नियमपूर्वक पढ़ने में पढ़ाने वाला कारक है उस की अपादान संज्ञा हो। उपाध्यायादधीते इत्यादि। वेतन लेने वाले से पढ़ता है। यहां उपयोग ग्रहण इसलिये है कि "नटस्य वचः शृणोति" इत्यादि में नियमपूर्वक विधान के न होने से अपादान कारक संज्ञा न हो।

९६-जनिकर्तुः प्रकृतिः ॥ अ० १ । ४ । ३० ॥

जन धातु का जो कर्ता उसकी प्रकृति अर्थात् जो कारण है वह अपादान संज्ञक हो। जैसे—अग्नेर्धूमो जायते, ॐ अव्यक्तात् कारणाद् व्यक्तं कार्यं जायते। अग्नि से धुंआ और सूक्ष्म अदृश्य नित्य-स्वरूप कारण से स्थूल, दृश्य, अनित्य रूप कार्य उत्पन्न होता है। यहां प्रकृतिग्रहण इसलिये है कि "पुत्रो मे गौरो जायते" इत्यादि में कारण की अपेक्षा न होने से अपादान संज्ञा नहीं होती ॥

९७-भुवः प्रभवः ॥ अ० १ । ४ । ३१ ॥

प्रभव उस को कहते हैं कि जहां से कोई पदार्थ उत्पन्न हुआ हो। जो भू धातु के कर्ता का प्रभव कारक है वह अपादान संज्ञक

ॐ यहां जन धातु का कर्त्ता धूम है, उसकी प्रकृति कारण अग्नि है। इससे उस की अपादान संज्ञा होकर पञ्चमी होती है।

हो। हिमवतो गङ्गा प्रभवति। हिमवान् पर्वत से गङ्गा उत्पन्न होती है। इसलिये हिमवान् शब्द की अपादान संज्ञा हो के पञ्चमी विभक्ति हुई है। अपादानकारक प्रकरण पूरा हुआ।

अब इस के आगे षष्ठी कारक[1] लिखेंगे, इस में संज्ञाप्रकरण नहीं है।

६–[शेषकारक]

९८–षष्ठी शेषे ॥ अ० २। ३। ५० ॥

भा०—कर्मादीनामविवक्षा शेषः। जहां कर्म आदि कारक संज्ञा की विवक्षा न हो वह शेष कहलाता है उस में षष्ठी विभक्ति हो। जैसे—राज्ञः पुरुषः, वृक्षस्य शाखाः, मृत्तिकाया घटः इत्यादि।

९९–ज्ञोऽविदर्थस्य करणे ॥ अ० २। ३। ५१ ॥

जो अविदर्थ अर्थात् अज्ञानार्थ ज्ञा धातु उस के करण कारक में षष्ठी विभक्ति होवे। जैसे—अग्निः सर्पिषो जानीते, ❀ मधुनो जानीते। अग्नि घी और शहद से प्रज्वलित होता है। यहां अविदर्थ ग्रहण इसलिये है कि "गौः स्वरेण वत्सं जानाति" इत्यादि में षष्ठी न हो।

१००–अधीगर्थदयेशां कर्मणि ॥ अ० २।३।५२ ॥

अधि पूर्वक स्मरण अर्थ वाला इक् इस के अर्थ के जो अन्य धातु तथा दय और ईश इन के अनभिहित कर्म में षष्ठी विभक्ति हो।

---

१. देखो भूमिका की हमारी टिप्पणी। यु० मी०।

❀ यहां सर्पिः घी और मधु शहद ज्ञा धातु के प्रयोग में साधकतम होने से करण हैं वहां तृतीया विभक्ति प्राप्त थी, उस का अपवाद यह षष्ठी का विधान किया है। परन्तु अर्थ तृतीया का ही बना रहता है। जैसे—घी और मधु से अग्नि बढ़ता है।

जैसे—अधीगर्थ-मातुरध्येति बालः, पितुः स्मरति बालः। दय—दुःखितस्य दयते। ईश—ग्रामस्येष्टे। यहां सर्वत्र द्वितीया प्राप्त थी उस की बाधक षष्ठी है। और कर्म ग्रहण इसलिये है कि "मातृगुणैः स्मरति बालः" यहां करणवाची गुण शब्द के होने से षष्ठी विभक्ति नहीं हुई।

१०१–कृञः प्रतियत्ने ॥ अ० २। ३। ५३॥

जो प्रतियत्न अर्थ में वर्तमान कृञ् धातु हो तो उस के शेष कर्म में षष्ठी विभक्ति हो। जैसे—एधोदकस्योपस्कुरुते †। पाककर्ता इन्धन जल तथा अन्य सब भोजन की सामग्री समीप धर के पाक बनावे।

१०२–रुजार्थानां भाववचनानामज्वरेः ॥अ०२।३।५४॥

यहां भाववचन शब्द से कर्तृस्थभावक रुजार्थ धातु समझे जाते हैं। जिन धातुओं के कर्त्ता में धातु का अर्थ रहता है, ऐसे रुजार्थक धातुओं में से ज्वर धातु को छोड़ के उन के शेष कर्म ‡ में षष्ठी हो। जैसे—चोरस्य रुजति, चोरस्यामयति इत्यादि। यहां रुजार्थ ग्रहण इसलिये है कि "ग्रामं गच्छति" इत्यादि में षष्ठी न हो और भाववचन ग्रहण इसलिये है कि "नदी कूलानि रुजति" यहां कर्मस्थभावक रुज धातु के कर्म में षष्ठी न हो, और ज्वर धातु का निषेध इसलिये है कि "बालं ज्वरयति ज्वरः" यहां कर्म में षष्ठी न हो।

१०३–वा०–अज्वरिसंताप्योरिति वक्तव्यम् ॥

अ० २। ३। ५४॥

जहां ज्वर धातु के कर्म में षष्ठी का निषेध किया है, वहां संपूर्वक

---

† यहां प्रतियत्न अर्थ में ही कृञ् धातु को सुट् का आगम कहा है। एधोदक शब्द कृञ धातु का कर्म है उस में द्वितीया प्राप्त है सो न हो।

‡ शेष कर्म के कहने से प्रयोजन यह है कि जिस कर्म में द्वितीया की विवक्षा न हो।

तापि धातु का भी समझना चाहिये। जैसे—चोरं सन्तापयति, दुष्कर्म। यहां इस वार्तिक से षष्ठी का निषेध हो के द्वितीया हुई।

१०४—आशिषि नाथः ॥ अ० २ । ३ । ५५ ॥

जो आशीर्वचन अर्थ में वर्तमान नाथ धातु हो तो उस के शेष कर्मकारक में षष्ठी विभक्ति होवे। जैसे—सर्पिषो नाथते, मधुनो नाथते * यहां आशिष् शब्द से इच्छा ली जाती है। इसलिये कर्मवाची सर्पिस् शब्द में षष्ठी विभक्ति हुई। आशिषि ग्रहण इसलिये है कि "अन्नं नाथते" यहां षष्ठी न हो।

१०५—जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम् ॥ अ० २ । ३ । ५६ ॥

जासि धातु चुरादि गण का नि और प्र ये उपसर्ग साथ वा पृथक् २ पूर्व हों ऐसा हन, नाट, क्राथ, और पिष इन हिंसार्थक धातुओं के शेष कर्म में षष्ठी विभक्ति होवे। चोरस्योज्जासयति। यहां जासि धातु के चोर कर्म में षष्ठी। निप्रहण—चोरस्य निप्रहन्ति, चोरस्य निहन्ति, चोरस्य प्रहन्ति। नाट—असुरस्योन्नाटयति। क्राथ—दुष्टस्य क्राथयति। पिष—दस्योः पिनष्टि इत्यादि। यहां जासि आदि धातुओं का परिगणन इसलिये है कि "दुष्टं हिनस्ति" इत्यादि में षष्ठी न हो। और हिंसा ग्रहण इसलिये है कि "औषधं पिनष्टि" यहां हिंसा के न होने से षष्ठी न हुई।

१०६—व्यवहृपणोः समर्थयोः ॥ अ० २ । ३ । ५७ ॥

समानार्थक जो वि अव पूर्वक हृ और पण धातु इन के शेष कर्म में षष्ठी विभक्ति हो। जैसे—शतस्य व्यवहरति, शतस्य पणा-

* घी चाहता है, मीठा चाहता है; यहां घी और मीठा नाथ धातु के कर्म हैं यहां षष्ठी द्वितीया की बोध है।

-यति इत्यादि। यहां समर्थ ग्रहण इसलिये है कि "विद्वांसं पणायति" यहां पण धातु स्तुति अर्थ में है। इस कारण से इस के कर्म में षष्ठी नहीं होती।

१०७–दिवस्तदर्थस्य ॥ अ० २ । ३ । ५८ ॥

व्यवहारार्थक दिवु धातु के शेष कर्म में षष्ठी विभक्ति हो। जैसे–शतस्य दीव्यति इत्यादि। सौ रुपये का व्यवहार करता है।

१०८–विभाषोपसर्गे ॥ अ० २ । ३ । ५९ ॥

उपसर्गपूर्वक व्यवहारार्थक दिवु धातु के शेष कर्म में विकल्प करके षष्ठी विभक्ति हो। शतस्य प्रदीव्यति, शतं प्रदीव्यति। यहां षष्ठी के विकल्प से पक्ष में द्वितीया विभक्ति भी होती है।

१०९–द्वितीया ब्राह्मणे ॥ अ० २ । ३ । ६० ॥

ब्राह्मण ग्रन्थों में व्यवहारार्थ दिवु धातु के कर्म कारक में द्वितीया विभक्ति हो। गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः। यहां गौ शब्द कर्म-वाची है उसमें द्वितीया होती है। अनुपसर्ग दिवु धातु के कर्म कारक में नित्य षष्ठी विभक्ति प्राप्त है, सो द्वितीया ही हो इसलिये यह सूत्र है।

११०–प्रेष्यब्रुवोर्हविषो देवतासंप्रदाने ॥अ०२।३।६१॥

जो वह हविष् कर्म, देवता अर्थात् दिव्यगुण होने के लिये दिया जाता हो तो प्र पूर्वक दिवादिगण वाला इष धातु और ब्रू धातु इन के हविष् कर्म में ब्राह्मणग्रन्थ विषय में षष्ठी विभक्ति हो। जैसे—इन्द्राग्निभ्यां छागस्य हविषो वपाया मेदसोऽनुब्रूहि *। यहां हविष् कर्म है अन्य षष्ठ्यन्त पद उस के विशेषण हैं। यहां "छागं हवि-र्वपां मेदः प्रेष्य" ऐसा प्राप्त है सो इस सूत्र से षष्ठी विभक्ति हो गई।

---

* अजा के अर्थ खाने पीने की वस्तु के योग से बिजुली और अग्नि को उपयुक्त कर और सुनकर उपदेश भी कर।

यहां प्र पूर्वक इष और ब्रु धातु का ग्रहण इसलिये है कि "अग्नये छागं हविर्वपां मेदो जुहुधि" इत्यादि के कर्म में षष्ठी न हो। हविष- ग्रहण इसलिये है कि 'अग्नये समिधः प्रेष्य' यहां समिध् कर्म में षष्ठी न हो। और देवतासंप्रदान ग्रहण इसलिये है कि "बालाय पुरोडाशं प्रेष्य" यहां देवता के न होने से षष्ठी न हुई।

१११–वा०–हविषोऽप्रस्थितस्येति वक्तव्यम् ॥

अ० २ । ३ । ६१ ॥

सूत्र से जो हविष् कर्म में षष्ठी कही है सो प्रस्थित विशेषण हो तो न हो, किन्तु द्वितीया ही हो इन्द्राग्निभ्यां छागं हविर्वपां मेदः प्रस्थितं प्रेष्य। यहां प्रस्थित विशेषण के होने से षष्ठी न हुई।

११२–चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि ॥ अ० २।३।६२॥

पूर्वसूत्रों में ब्राह्मण शब्द से ऐतरेय आदि वेद व्याख्यानों का ग्रहण होता है और यहां छन्दः शब्द से वेदों का ग्रहण होता है, इसलिये इस सूत्र में छन्द ग्रहण किया है। वेद विषय में चतुर्थी के अर्थ में षष्ठी विभक्ति बहुल करके हो। जैसे—दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनाम्। यहां "वनस्पतिभ्यः" ऐसा प्राप्त था।

११३–वा०–षष्ठ्यर्थे चतुर्थी वक्तव्या ।।अ०२।३।६२॥

षष्ठी के अर्थ में चतुर्थी विभक्ति कहनी चाहिये। या खर्वेण पिबति 'तस्यै' खर्वो जायते, तस्याः खर्वो जायत इति प्राप्ते इत्यादि। यहां 'तस्यै' शब्द में षष्ठी के स्थान में चतुर्थी हुई है।

११४–यजेश्च करणे ॥ अ० २ । ३ । ६३ ॥

वेद विषयक यज धातु के करण कारक में बहुल करके षष्ठी विभक्ति हो। घृतस्य घृतेन वा यजते। यहां करण कारक में तृतीया विभक्ति प्राप्त थी, सो उस का अपवाद होने से घृत शब्द में तृतीया और षष्ठी दोनों होती हैं।

४

११५—कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे ॥अ० २।३।६४॥

कृत्वसुच् और इस के समानार्थ प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों के प्रयोग में जो कालवाची अधिकरण वाचक शब्द हो तो उस से अधिकरण कारक में षष्ठी विभक्ति हो। यहां सप्तमी विभक्ति प्राप्त है उस का अपवाद यह सूत्र है। जैसे—दिवसस्य पञ्चकृत्वो भुङ्क्ते बालः। एक दिन में यह बालक पांच बार खाता है। दिवसस्य द्विरधीते इत्यादि। एक दिन भर में दो बार पढ़ता है। यहां कृत्वोऽर्थप्रयोग ग्रहण इसलिये है कि "दिनमधीते, अयसः पात्रे भुङ्क्ते" इत्यादि में षष्ठी न हो। काल अधिकरण ग्रहण इसलिये है कि "काष्टं द्विः करोति" इत्यादि में षष्ठी न हो।

११६—कर्तृकर्मणोः कृति ॥ अ० २। ३। ६५ ॥

कृदन्त संबन्धी कर्ता और कर्म कारक में षष्ठी विभक्ति हो। जैसे—देवदत्तस्य प्रज्ञा, देवदत्तस्येज्या, पुरां भेत्ता, कूपस्य खनिता। कर्तृ कर्म ग्रहण इसलिये है कि "दात्रेण छेत्ता" इत्यादि में षष्ठी विभक्ति न हो। और कृत् ग्रहण इसलिये है "कृतपूर्वी कटम्" इत्यादि तद्धित के प्रयोग में षष्ठी न हो।

११७—उभयप्राप्तौ कर्मणि ॥ अ० २। ३। ६६ ॥

पूर्वसूत्र से कृत् युक्त कर्ता तथा कर्म में सर्वत्र षष्ठी प्राप्त है, उस का नियम करने के लिये यह सूत्र है। जिस कृदन्त के योग में कर्ता और कर्म दोनों में एक साथ षष्ठी प्राप्त हो वहाँ कर्म में षष्ठी और कर्ता में तृतीया हो। जैसे—ओदनस्य पाको देवदत्तेन। यहाँ ओदन कर्म में षष्ठी और अनभिहित के होने से देवदत्त कर्ता में तृतीया हो गई।

११८—वा०—अकाकारयोः स्त्रीप्रत्यययोः प्रयोगे प्रतिषेधो न * ॥ २। ३। ६६ ॥

---

* यह वार्तिक "उभयप्रा०" इसी सूत्र का अपवाद है, क्योंकि कृद्योग

जो 'ण्वुल्' और 'अ' ये स्त्री प्रत्यय जिन के अन्त में हों उन शब्दों के प्रयोग में कर्ता में भी षष्ठी विभक्ति 'हो' अर्थात् दोनों में एक साथ हो जावे। जैसे—भेदिका देवदत्तस्य काष्ठानाम्, चिकीर्षा विष्णुमित्रस्य कटस्य।

११९—वा०—शेषे विभाषा + ॥ २ । ३ । ६६ ॥

शेष कृदन्त स्त्री प्रत्यय के योग में कर्त्ता में विकल्प कर के षष्ठी विभक्ति हो। और कर्म में तो सूत्र ही से नित्य विधान है। जैसे—शोभना खलु पाणिनेः सूत्रस्य कृतिः, शोभना खलु पाणिनिना सूत्रस्य कृतिः इत्यादि।

१२०—क्तस्य च वर्तमाने ‡ ॥ अ० २ । ३ । ६७ ॥

जो वर्तमान काल में क्त प्रत्ययान्त शब्द है उस के संबन्ध में षष्ठी विभक्ति हो। जैसे—राज्ञां मतः, राज्ञां बुद्धः, राज्ञां पूजितः। यह विद्वान् राजाओं का मान्य, जाना और सत्कृत है। यहां क्त ग्रहण इसलिये है कि "गुरुं भजमानः" यहां कर्म में षष्ठी न हो और वर्तमान ग्रहण इसलिये है कि "ग्रामं गतः" यहां भूतकाल के होने से षष्ठी न हो।

में सामान्य कर के जो षष्ठी का विधान है उस को नियत विषय में कर करता है।

+ यह अप्राप्त विभाषा यों समझनी चाहिये कि शेष स्त्री प्रत्यय के योग में कर्तृवाची शब्द से किसी सूत्र कर के षष्ठी प्राप्त नहीं, प्रत्युत "उभयप्रा०" (का० ११७) इस से कर्म का नियम होने से कर्ता का निषेध तो है।

‡ क्त प्रत्यय की निष्ठा संज्ञा होने से आगे "न लोका०" (का०१२३) इस सूत्र कर के षष्ठी का निषेध प्राप्त है। इसलिये यह सूत्र उस का पुरस्तात् अपवाद है।

१२१–वा०–क्तस्य च वर्तमाने नपुंसके भाव उपसंख्यानम् * २ । ३ । ६७ ॥

जो नपुंसक भाव में क्तप्रत्ययान्त है उस के कर्ता में षष्ठी विभक्ति हो। जैसे—छात्रस्य हसितम्, नटस्य भुक्तम्, मयूरस्य नृत्तम्, इत्यादि। विद्यार्थी का हसना, नट का भोजन, मोर का नाचना देखो।

१२२ अधिकरणवाचिनश्च ॥ अ० २ । ३ । ६८ ॥

अधिकरणवाची क्त प्रत्ययान्त के योग में कर्ता में षष्ठी विभक्ति हो। जैसे—इदमेषामासितम्, इदमेषां यातम् †।

१२३–न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् ॥अ०२।३।६९॥

जो कृदन्त के योग में कर्म में षष्ठी प्राप्त है, उसी विषय का यह सूत्र निषेध करता है, इसलिये उसी का अपवाद है। (ल) (उ) (उक) (अव्यय) (निष्ठा) (खलर्थ) और (तृन्)। इन कृत् प्रत्ययान्त शब्दों के योग में कर्म में षष्ठी विभक्ति न हो (ल) अर्थात् जो लकार के स्थान में तिङ्, शतृ, शानच्, कानच्, क्वसु, कि, किन् आदि आदेश होते हैं। जैसे—तिङ्–देवदत्त ओदनं पचति, देवदत्तेनौदनः पच्यते, ग्रामं गच्छति, ग्रामो गम्यते। इत्यादि। शतृ–ओदनं पचन्। शानच्–ओदनं पचमानः। कानच्–सूर्यमुभयतो ददृशानः। क्वसु–सोमं पपिवान्। कि किन्–ददिर्गाः। इत्यादि।

---

* पूर्वसूत्र में वर्तमान के कहने से नपुंसक भाव में प्राप्ति नहीं, इसलिये यह भी वार्त्तिक "न लोका०" (का० १२३) इसी वक्ष्यमाण सूत्र का अपवाद समझना ठीक है।

† 'आसितम्' बैठने का स्थान और 'यातम्' चलने का मार्ग है। 'एषां' यह कर्ता में षष्ठी है और यह सूत्र भी "न लोका०" (का० १२३) इसी अगले सूत्र का अपवाद है।

उ—कटं चिकीर्षुः, ग्रामं जिगमिषुः, विद्यां पिपठिषुः इत्यादि। उकञ्—सत्यं प्रतिपादुकः। अव्यय—ग्रामं गत्वा। ओदनं भुक्त्वा। निष्ठा—क्त और क्तवतु प्रत्ययान्त के योग में षष्ठी न हो। देवदत्तेन कृतं पयः। कटं कृतवान्। खलर्थ—ईषद्भोज ओदनो भवता, ईषत्पानं पयो भवता। तृन् प्रत्याहार से शानन्, चानश्, शतृ, तृन् इन चार प्रत्ययान्तों का ग्रहण होता है। शानन्—सोमं पवमानः। चानश्—पतङ्गान्निघ्नानः। शतृ—विद्यां धारयन्। तृन्—लविता यवान्, पठिता वेदान्। इत्यादि।

१२४—वा०—उकप्रतिषेधे कमेर्भाषायामप्रतिषेधः॥ ❀ २। ३। ६९॥

वेद से अन्य आर्ष वेदानुकूल ग्रन्थों को भाषा कहते हैं जो उक प्रत्ययान्त के योग में षष्ठी का निषेध किया है वहां उक प्रत्ययान्त भाषा विषयक कम धातु के प्रयोग में निषेध न हो, किन्तु षष्ठी विभक्ति हो जावे। जैसे—दास्याः कामुकः। वृषल्याः कामुकः। दासी और वृषली वेश्या से भोग की इच्छा वाला इत्यादि।

१२५—वा०—अव्ययप्रतिषेधे तोसुन्कसुनोरप्रतिषेधः ❀॥ २। ३। ६९॥

जो अव्यय के योग में षष्ठी का निषेध किया है, वहां तोसुन् और कसुन् प्रत्ययान्त के योग में षष्ठी का निषेध न हो। जैसे—तोसुन्—पुरा सूर्यस्योदेतोराधेयः,। कसुन्—पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन् इत्यादि।

❀ ये दोनों वार्तिक इसी सूत्र के विषय में निषेध का निषेध करके षष्ठी के विधायक हैं। इसलिये "न लोका०" इस के अपवाद हैं।

१२६—वा०—द्विषः शतुर्वावचनम् * ॥२।३।६९॥

द्विष धातु से शतृ प्रत्ययान्त के योग में षष्ठी विभक्ति विकल्प करके हो। जैसे—चोरस्य द्विषन्, चोरं द्विषन्। तृन् प्रत्याहार में शतृ प्रत्यय के होने से निषेध प्राप्त था। उसका विकल्प करने के लिये यह तीसरा वार्त्तिक है।

१२७—अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः ॥ अ० २।३।७० ॥

अक और इन् प्रत्ययान्त शब्द के कर्म में षष्ठी विभक्ति न हो।

१२८—वा०—अकस्य भविष्यतीन आधमर्ण्ये च † ॥ २ । ३ । ७० ॥

अकान्त के योग में भविष्यत् काल और इन के योग में आधमर्ण्य तथा भविष्यत् काल अर्थ लगते हैं। जैसे—यवान् लावको व्रजति। यहां अक के योग में केवल भविष्यत् ही है और "ग्रामं गमी" यहां इन्नन्त के योग में भविष्यत्काल में और "शतं दायी" "सहस्रं दायी" यहां आधमर्ण्य है। इत्यादि। यहां भविष्यत् और आधमर्ण्य में निषेध इसलिये है कि "यवानां लावकः" यहां षष्ठी का निषेध न हो, किन्तु षष्ठी हो जावे।

१२९—कृत्यानां कर्तरि वा ॥ अ० २ । ३ । ७१ ॥

कृत्य प्रत्ययान्त के कर्ता में विकल्प करके षष्ठी और पक्ष में तृतीया होवे। जैसे—ब्राह्मणेन ब्राह्मणस्य वा पठितव्यम्, देवदत्तेन

---

* इस वार्तिक में अप्राप्त विभाषा इसलिये है कि "न लोका०" (का० १२३) इससे सर्वथा षष्ठी का निषेध हो चुका है, उस का यह विकल्प से विधान करता है।

† यह भी वार्तिक "कर्तृकर्म०" [का० ११६] इसी का अपवाद है। क्योंकि कर्म में षष्ठी इसी से प्राप्त है।

देवदत्तस्य वा आसितव्यम् इत्यादि। यहां कर्तरि ग्रहण इसलिये है कि "वक्तव्यः श्लोकः" यहां कर्म में षष्ठी न हो। इस सूत्र में महाभाष्यकार ने योग विभाग करके दो अर्थ किये हैं। एक उभयप्राप्त कृत्य प्रत्ययान्त के योग में षष्ठी न हो। जैसे—ग्राममाकष्टव्या शाखा देवदत्तेन इत्यादि। दूसरा कृत्य प्रत्यय के योग में कर्ता में षष्ठी विकल्प करके हो। इसके उदाहरण सूत्र की व्याख्या में लिख चुके हैं।

१३०—तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम् ॥ अ० २। ३। ७२॥

पूर्वसूत्र में विकल्प ग्रहण था फिर दूसरी बार करने का प्रयोजन यह है कि यहां कर्ता की अनुवृत्ति न आवै। तुल्य और इस के पर्यायवाची शब्दों के योग में कर्म में विकल्प करके तृतीया और पक्ष में षष्ठी विभक्ति हो, तुला और उपमा शब्द को छोड़ के। जैसे—तुल्यः सदृशो वा देवदत्तेन देवदत्तस्य वा विष्णुमित्रः, इत्यादि। यहां तुला और उपमा शब्द का निषेध इसलिये है कि "तुलोपमा वा परमात्मनो नास्ति" यहां परमात्मा शब्द से तृतीया न हुई, शेष के होने से षष्ठी हो गई।

१३१—चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः ॥ अ० २। ३। ७३॥

जो आशीर्वचन अर्थ में वर्तमान आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ और हित हैं इन शब्दों के योग में विकल्प करके चतुर्थी और पक्ष में षष्ठी विभक्ति होवे। जैसे—[आयुष्य—] आयुष्यं शिष्याय शिष्यस्य वा, मद्र—मद्रं बालाय बालस्य वा, भद्र—भद्रं पुत्राय पुत्रस्य वा, कुशल—कुशलं देवदत्ताय देवदत्तस्य वा, सुख—सुखं पण्डिताय पण्डितस्य वा। अर्थ—अर्थो देवदत्ताय देवदत्तस्य वा, हित—हितं माणवकाय माणवकस्य वा इत्यादि। यहां आशीर्वचन ग्रहण इसलिये

है कि "आयुष्यमस्य ब्रह्मचर्यम्" इत्यादि में चतुर्थी विभक्ति न हो।

यह शेष कारक पूरा हुआ।

[७–अधिकरणकारक]

१३२–आधारोऽधिकरणम् ॥ अ० १ । ४ । ४५ ॥

जिस में पदार्थ धरे जाते हैं वह आधार कहाता है। सो एक की अपेक्षा में दूसरा आधार बन जाता है। परिपूर्ण परमेश्वर में पहुँच के समाप्ति हो जाती है। जो आधार कारक है वह अधिकरण संज्ञक हो। इसका फल—

१३३–सप्तम्यधिकरणे च ॥ अ० २ । ३ । ३६ ॥

अधिकरण तीन प्रकार का होता है। इसको प्रमाण सहित पूर्व लिख चुके हैं[1]। अधिकरण में और चकार से दूरवाची तथा समीपवाची शब्दों से भी सप्तमी विभक्ति होवे। जैसे—व्यापक—दध्नि घृतम्, तिलेषु तैलम् ❀ इत्यादि। औपश्लेषिक–कटे शेते, खट्वायां शेते। पीठ आस्ते † इत्यादि। वैषयिक–खे शकुनयः, श्रोत्रे शब्दो विबध्यते ‡ इत्यादि। आकाश के विषय [होने से] यहां ख शब्द में सप्तमी विभक्ति हुई है। अब आगे वार्त्तिक लिखेंगे।

---

१. ग्रन्थ के प्रारम्भ में उपक्रम प्रकरण में पृष्ठ ४। यु० मी०

❀ दही और तिलों के सब अवयवों में घी और तेल व्याप्त रहता है इस कारण इस को व्यापक कहते हैं।

† चटाई, खटिया और आसन पर बैठने वाले का उससे अति निकट सम्बन्ध होता है, इसलिये इस अधिकरण को औपश्लेषिक कहते हैं।

‡ पक्षियों के उड़ने का विषय आकाश और कान का विषय शब्द है, इस कारण यह वैषयिक अधिकरण कहाता है।

१३४—वा०—सप्तमीविधाने क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम् ॥ अ० २ । ३ । ३६ ॥

क्त प्रत्ययान्त शब्द से जहां इन् प्रत्यय होता है वहां कर्म कारक में सप्तमी विभक्ति हो। जैसे-असावधीती व्याकरणे *, परिगणिती याज्ञिके इत्यादि।

१३५—वा०—साध्वसाधुप्रयोगे च † ॥२ । ३ । ३६॥

साधु और असाधु शब्द के प्रयोग में भी सप्तमी विभक्ति हो। जैसे—साधुर्देवदत्तो मातरि, असाधव आर्येषु दस्यवः इत्यादि।

१३६—वा०—कारकार्हाणां च कारकत्वे ॥२।३।३६॥

जहां कारक अपने कृत्य को ठीक ठीक प्राप्त हों वहां उनसे सप्तमी विभक्ति हो। जैसे—ऋद्धेषु भुञ्जानेषु दरिद्रा आसत इत्यादि। संपन्न पुरुष अच्छे अच्छे पदार्थ भोगते और दरिद्र बैठे देखते हैं।

१३७—वा०—अकारकार्हाणां चाकारकत्वे ॥२।३।३६॥

जहां अयोग्य कारक अपनी अयोग्यता को ठीक २ प्राप्त हों वहां सप्तमी विभक्ति हो। मूर्खेष्वासीनेषु ऋद्धा भुञ्जते, वृषलेष्वासीनेषु ब्राह्मणास्तरन्ति इत्यादि। यहां मूर्ख और वृषल अपनी अयोग्यता को प्राप्त होते हैं, उन्हीं में सप्तमी हुई।

१३८—वा०—तद्विपर्यासे च ॥ २ । ३ । ३६ ॥

और जहां इन कर्मों के बदलने में अर्थात् अच्छों को बुरों की योग्यता और बुरों को अच्छों की योग्यता हो वहां पूर्व प्रयुक्त शब्दों

* यहां अधीत शब्द क्त प्रत्ययान्त इन् विषयक है उस के कर्म व्याकरण शब्द में सप्तमी होती है।

† यहां से जो वार्तिक हैं, वे किसी के अपवाद नहीं, किन्तु अपूर्व विधायक हैं। क्योंकि वहां किसी सूत्र वा वार्तिक से सप्तमी प्राप्त नहीं है।

में सप्तमी हो जैसे—ऋद्धेष्वासीनेषु मूर्खा भुञ्जते, ब्राह्मणेष्वासीनेषु वृषलास्तरन्ति इत्यादि ।

१३६–वा०–निमित्तात् कर्मसंयोगे ॥ २ । ३ । ३६ ॥

कर्म संयोग में जिस निमित्त के लिये वह कर्म किया जाता है उन निमित्तवाची शब्दों से सप्तमी विभक्ति हो । जैसे—

चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम् ।
केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः ॥

(चर्मणि०) चर्म के लिये गैंडे को मारता है (दन्त०) दांतों के लिये हाथी को मारता है (केशेषु०) केशों के लिये चमरी अर्थात् जङ्गली सुरा गौ को मारता है और (सीम्नि पुष्कलको०) कस्तूरी की चाहना करके कस्तूरिया मृग को मारता है, इस कारण चर्म आदि शब्दों से सप्तमी विभक्ति हो जाती है ❀ ।

१४०–यस्य च भावेन भावलक्षणम् ॥अ०२।३।३७॥

जिस क्रिया से क्रिया का लक्षण किया जाय उस में सप्तमी विभक्ति हो । जैसे—गोषु दुह्यमानासु गतो दुग्धास्त्वागतः † । यहां भावेन ग्रहण इसलिये है कि "यो जटिलः स भुङ्क्ते" इत्यादि में सप्तमी न हो ।

१४१–षष्ठी चानादरे ॥ अ० २ । ३ । ३८ ॥

अनादर अर्थ में जिस क्रिया से क्रिया का लक्षण किया जाय वहां षष्ठी विभक्ति और चकार से सप्तमी भी हो । जैसे—आहूय-

❀ गैंडे आदि को मारे विना चाम आदि की प्राप्ति नहीं हो सकती, फिर ढाल आदि वस्तु कैसे बनें, इस कारण चाम आदि उन के मारने में निमित्त हैं ।

† यहां दोहनरूप से गमन क्रिया का लक्षण किया जाता है, इस से दोहन क्रिया में सप्तमी हुई ।

मानस्याहूयमाने वा गतः। आहूयमान अर्थात् बुलाते हुए का तिरस्कार करके चला गया। यहां आहूयमान शब्द में षष्ठी और सप्तमी विभक्ति हुई हैं।

१४२–स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च † ॥ अ० २। ३। ३९॥

स्वामिन्, ईश्वर, अधिपति, दायाद, साक्षिन्, प्रतिभू और प्रसूत इन शब्दों के योग में षष्ठी और सप्तमी विभक्ति हों। जैसे—स्वामिन्-गवां स्वामी, गोषु स्वामी। ईश्वर–पृथिव्या ईश्वरः, पृथिव्यामीश्वरः। अधिपति–ग्रामस्याधिपतिः, ग्रामेऽधिपतिः। दायाद–क्षेत्रस्य क्षेत्रे वा दायदः। साक्षिन्–देवदत्तस्य देवदत्ते वा साक्षी। प्रतिभू–धनस्य धने वा प्रतिभूः। प्रसूत–गवां प्रसूतः, गोषु प्रसूतः। इस सूत्र में स्वामिन्-आदि शब्दों के योग में शेष कारक के होने से सर्वत्र षष्ठी प्राप्त थी, सो सप्तमी भी हो जावे इसलिये यह सूत्र है।

१४३–आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम् ॥अ०२।३।४०॥

जो आसेवा अर्थ में वर्तमान आयुक्त और कुशल शब्द हैं, उनके योग में षष्ठी और सप्तमी विभक्ति हों। जैसे—आयुक्तः पठनस्य पठने वा, कुशलो लेखनस्य लेखने वा। यहां आसेवा ग्रहण इसलिये है कि "आयुक्तो वृषभः शकटे" इत्यादि में षष्ठी न हो। अधिकरण में सप्तमी तो प्राप्त ही थी, षष्ठी होने के लिये यह सूत्र है।

१४४–यतश्च निर्धारणम् ॥ अ० २। ३। ४१॥

जो समुदायवाची जाति आदि शब्दों से एक का पृथक् करना है उसको निर्धारण कहते हैं जिससे निर्धारण अर्थात् किसी को

† यह चकार षष्ठी और सप्तमी दोनों विभक्तियों का आकर्षण होने के लिये है।

पृथक् किया जावे उस से षष्ठी, सप्तमी विभक्ति हों। जैसे—ब्राह्मणानां ब्राह्मणेषु वा देवदत्तः। श्रेष्ठतम, इससे यहां ब्राह्मण शब्द में षष्ठी, सप्तमी हो गई।

१४५–पञ्चमी विभक्ते ॥ अ० २। ३। ४२॥

पूर्व सूत्र से निर्धारण अर्थ में षष्ठी, सप्तमी विभक्ति प्राप्त है। उसका अपवाद यह सूत्र है। निर्द्धारण में जिसका विभाग किया जाय उसमें पञ्चमी विभक्ति हो। जैसे—पाटलिपुत्रेभ्यः सांकाश्या आढ्यतराः। इत्यादि जो पूर्वसूत्र से निर्द्धारण होता है वह समुदाय से एक ही का पृथक् भाव समझना और इस सूत्र से एक से दूसरे का विभाग होता है[1]।

१४६–साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः ॥ अ० २। ३। ४३॥

जो पूजा अर्थात् सत्कारपूर्वक सेवा करने अर्थ में वर्त्तमान साधु और निपुण शब्द हों तो इन के प्रयोग में सप्तमी विभक्ति होवे, परन्तु प्रति के योग में इस अर्थ में भी न हो। जैसे—मातरि साधुः, पितरि साधुः, मातरि निपुणः, पितरि निपुणः इत्यादि। यहां अर्चा ग्रहण इसलिये है कि "साधुर्देवदत्तस्य पुत्रः" इत्यादि में न हो जाय। प्रति का निषेध इसलिये है कि "साधुर्देवदत्तो मातरं प्रति" यहां प्रति के योग में सप्तमी न हो।

---

१. इसका अभिप्राय यह है कि सजातीयों में किसी को पृथक् करने में पूर्व (१४४) सूत्र की प्रवृत्ति होती है, और जहां सर्वदा पार्थक्य रहता है वहां भेद दिखाने के लिये इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है। यद्यपि पाटलिपुत्र और सांकाश्य के रहने वाले प्राणिरूप से एक जाति के हैं, तथापि पाटलिपुत्र और सांकाश्य के भेद से उनका सदा ही भेद रहता है। जहां भेद अभेद दोनों होता है, वहां पूर्वसूत्र (१४४) की प्रवृत्ति होती है। यु०मी०

१४७–वा०–अप्रत्यादिभिरिति वक्तव्यम् ॥
अ० २ । ३ । ४३ ॥

जो प्रति के योग में सप्तमी का निषेध किया है सो प्रति आदि अन्य शब्दों के योग में भी समझा जावे। जैसे—साधुर्देवदत्तो मातरं परि, मातरमनु, इत्यादि के योग में भी सप्तमी विभक्ति न हो।

१४८–प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च ॥अ०२।३।४४॥

जो अधिकरण कारक में सप्तमी विभक्ति प्राप्त है उसका अपवाद यह सूत्र है। प्रसित और उत्सुक शब्दों के योग में तृतीया और सप्तमी विभक्ति हों। जैसे—केशैः केशेषु वा प्रसितः, मात्रा मातरि वा प्रसितः, सत्येन सत्ये वा प्रसितः। प्रसित कहते हैं जो उस में अतिप्रसक्त हो। गानेन गाने वोत्सुकः। उत्सुक कहते हैं जो किसी को प्राप्त करने की इच्छा कर रहा हो।

१४९–नक्षत्रे च लुपि ॥ अ० २ । ३ । ४५ ॥

यहां उस नक्षत्रवाची शब्द का ग्रहण है कि जहां काल अर्थ में प्रत्यय का लुप् हो जाता है। लुबन्त नक्षत्र से तृतीया और सप्तमी विभक्ति हों। जैसे—पुष्येण पुष्ये वा कार्यमारभेत इत्यादि। पुष्य नक्षत्र जिस दिन हो उस दिन कार्य का आरम्भ करे।

अब जो अधिकरण संज्ञा के विशेष सूत्र हैं, सो लिखते हैं—

१५०–अधिशीङ्स्थासां कर्म ॥ अ० १ । ४ । ४६ ॥

अधिकरण संज्ञा का अपवाद यह सूत्र है जो अधिपूर्वक शीङ्, स्था और आस धातु का आधार कारक है वह कर्म संज्ञक हो। कर्मकारक में द्वितीया कह चुके हैं। जैसे—खट्वामधिशेते, भूमिमधिशेते। खाट और भूमि में सोते हैं। जैसे—सभामधितिष्ठति, सभामध्यास्ते। सभा में बैठा है। यहां अधि उपसर्ग का ग्रहण इसलिये है कि "खट्वायां शेते, सभायामास्ते" इत्यादि में न हो।

१५१–अभिनिविशश्च ॥ अ० १ । ४ । ४७ ॥

यहां मण्डूकप्लुतगति मान के "परिक्रयणे०" (का० ५३) इस सूत्र से विकल्प की अनुवृत्ति आती है। जो अभि और नि पूर्वक विश धातु का आधार कारक है वह विकल्प करके कर्म संज्ञक हो, पक्ष में अधिकरण संज्ञा हो जावे। यह कर्मप्रवचनीय गति और उपसर्ग संज्ञा का अपवाद है। नह्यपवादविषयमुत्सर्गोऽभिनिविशते, नह्यपवादविषय उत्सर्गोऽभिनिविशते। यहां अपवाद विषय शब्द से कर्म संज्ञा पक्ष में द्वितीया और अधिकरण-संज्ञा पक्ष में सप्तमी विभक्ति हो जाती है। तथा–सन्मार्गमभिनिविशते, सन्मार्गेऽभिनिविशते इत्यादि।

१५२–उपान्वध्याङ्वसः ॥ अ० १ । ४ । ४८ ॥

यह सूत्र भी अधिकरण संज्ञा का अपवाद है। जो उप, अनु, अधि और आङ्, उपसर्ग पूर्वक वस धातु का आधार कारक है वह कर्म संज्ञक हो। पर्वतमुपवसति, अनुवसति, अधिवसति, आवसति वा, ग्राममुपवसति, अनुवसति, अधिवसति, आवसति वा इत्यादि। पर्वत और ग्राम के समीप वा उन के बीच में वास करता है।

यह अधिकरण कारक का प्रकरण और ये सातों कारक पूरे हुए। अब इस के आगे कर्मप्रवचनीय का प्रकरण लिखेंगे, क्योंकि यह भी कारक से ही सम्बन्ध रखता है।

१५३–कर्मप्रवचनीयाः ॥ अ० १ । ४ । ८३ ॥

यहां से आगे कर्मप्रवचनीय का अधिकार है।

संज्ञा करने का प्रयोजन यही है कि थोड़े अक्षरों के कहने से बहुत अर्थ समझा जावे। जैसे—हाथी, पर्वत, सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि के कहने से बड़े बड़े अर्थ समझे जाते हैं।

(प्रश्न) कर्मप्रवचनीय इतनी बड़ी संज्ञा क्यों की ?

(उत्तर) भा०—अन्वर्था संज्ञा यथा विज्ञायते, कर्म प्रोक्तवन्तः कर्मप्रवचनीयाः । जिस से यौगिक संज्ञा समझी जावे । जो शब्द क्रिया को कह चुका हो उस को कर्मप्रवचनीय कहते हैं ।

१५४—कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया ॥ अ० २।३।८ ॥

जहां जहां कर्मप्रवचनीय शब्दों के योग में द्वितीया विभक्तिक हैं वहां वहां इसी सूत्र से होवे । जैसे—शाकल्यस्य संहितामनु प्रावर्षत् इत्यादि । यहां संहिता शब्द से द्वितीया विभक्ति हुई है ।

१५५—अनुर्लक्षणे ॥ अ० १ । ४ । ८४ ॥

इस सूत्र में लक्षण शब्द हेतु का वाची है । उस हेतु अर्थ में तृतीया विभक्ति थी, उसका अपवाद होने के लिये इस सूत्र का आरम्भ है । नहीं तो (लक्षणेत्थं०) इस आगे के सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा सिद्ध ही थी । जो लक्षण अर्थ में वर्तमान अनु शब्द हो तो वह कर्मप्रवचनीय संज्ञक हो । जैसे—शाकल्यस्य संहितामनु प्रावर्षत इत्यादि । यहां संहिता शब्द में द्वितीया हुई है ।

१५६—तृतीयार्थे ॥ अ० १ । ४ । ८५ ॥

जो तृतीया विभक्ति के अर्थ में वर्त्तमान अनु शब्द है उस की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो जैसे—नदीमनुगच्छन्ति तृणानि । नदी के जल के साथ तृण चलते हैं, इत्यादि यहां भी नदी शब्द से द्वितीया विभक्ति हुई ।

१५७—हीने ॥ अ० १ । ४ । ८६ ॥

इस सूत्र में हीन शब्द छोटे का वाची है । सो एक की अपेक्षा में एक छोटा और बड़ा होता ही है, जो हीन अर्थ में वर्तमान अनु हो तो उसकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो । जैसे—अनु यास्कं नैरुक्ताः, अनु गोतमं नैयायिकाः, अनु शाकटायनं वैयाकरणाः । यहां यास्क

आदि शब्दों की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से उन शब्दों से द्वितीया विभक्ति होती है।

१५८–उपोऽधिके च ॥ अ० १।४।८७॥

जो अधिक और चकार से हीन अर्थ में भी वर्तमान उप शब्द हो तो उस की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो। इस का फल—

१५९–यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी ॥ अ० २।३।९॥

द्वितीया विभक्ति का अपवाद यह सूत्र है। जिसमें अधिक और जिस का ईश्वर वचन अर्थात् बहुतों के बीच में अधिक सामर्थ्य कहना हो वहां कर्मप्रवचनीय शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति हो जैसे–प्रजायामुप राजा ॐ। अधिक ग्रहण इसलिये है कि–उप शाकटायनं वैयाकरणाः †। यहां न हो इत्यादि।

१६०–अपपरी वर्जने ॥ अ० १।४।८८॥

वर्जन कहते हैं निषेध को। जो वर्जन अर्थ में वर्तमान अप और परि शब्द हैं वे कर्मप्रवचनीय संज्ञक हों।

१६१–आङ् मर्यादावचने ॥ अ० १।४।८९॥

मर्यादा उस को कहते है कि यहां तक यह वस्तु है। उस का कहना, मर्यादा वचन कहाता है, जो मर्यादा वचन अर्थ में वर्तमान आङ् शब्द है, उस की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो। इन दोनों का फल—

ॐ यहां प्रजा के बीच राजा का अधिक सामर्थ्य है इसलिये उप की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होकर उस के योग में प्रजा शब्द से सप्तमी विभक्ति हुई है।

† शाकटायन से अन्य वैयाकरण न्यून हैं। यहां अधिक अर्थ के न होने से द्वितीया ही होती है।

१६२–पञ्चम्यपाङ्परिभिः ॥ अ० २ । ३ । १० ॥

कर्मप्रवचनीय संज्ञक अप, आङ् और परि शब्दों के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे—अप ग्रामाद् वृष्टो मेघः, परि ग्रामाद्वा। ग्राम को छोड़ के मेघ वर्षा अर्थात् ग्राम पर नहीं वर्षा। मर्यादा-वचन में आङ्–आ समुद्रादार्यावर्त्तः। समुद्रपर्यन्त आर्यावर्त्त की अवधि है। यहां वर्जन ग्रहण इसलिये है कि, "पण्डितमप वदति"। मर्यादा ग्रहण इसलिये है कि "आगच्छन्ति वैयाकरणाः" यहां मर्यादा अर्थ के न होने से कर्म प्रवचनीय संज्ञा न हुई।

तथा वचन ग्रहण[1] इसलिये है कि अभिविधि अर्थ में भी कर्म-प्रवचनीय संज्ञा होवे—"आकुमारम्, आकुमारेभ्यो [वा] यशः पाणिनेः" यहां [मर्यादा और] अभिविधि अर्थ में कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो के दो प्रयोग बनते हैं। कारण यह है कि कर्मप्रवचीय संज्ञक आकार का पञ्चमी विभक्ति के साथ विकल्प करके अव्ययीभाव ❀ समास होता है। जिस पक्ष में समास हो जाता है वहां [समास से होने वाली] विभक्ति के स्थान में † अम् आदेश होता है और जहां अव्ययीभाव समास नहीं होता, वहां पञ्चमी विभक्ति बनी रहती है।

१६३–लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः ॥ अ० १ । ४ । ९० ॥

जिससे अर्थ जा[illegible]ा जाय वह लक्षण, जैसा है वैसा कहना इत्थंभूताख्यान, भाग = अंश, वीप्सा = व्याप्ति इन अर्थों के जानने

---

१. आङ्मर्यादावचने (का० १६१) पूर्व सूत्र में। यु० मी०।

❀ (अव्ययीभाव समास–विकल्प) आङ्मर्यादाऽभिविध्योः ॥ अ० २। १। १३ ॥

† नाऽव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः ॥ अ० २। ४। ८३ ॥

वाले जो प्रति, परि और अनु शब्द हैं वे कर्मप्रवचनीय संज्ञक हों। जैसे लक्षण–वृक्षं प्रति, वृक्षं परि, वृक्षमनु विद्योतते विद्युत्। वृक्ष के सामने ऊपर और पश्चात् बिजुली चमकती है। इत्थंभूताख्यान–परमात्मानं धर्मं च प्रति, परमात्मानं परि, परमात्मानमनु साधुरयं मनुष्यो वर्त्तते। सत्यप्रेम भक्ति से युक्त हो के यह मनुष्य परमात्मा और धर्म का उपासक है। भाग–यदत्र मां प्रति स्यात्, मां परि स्यात्, मामनु स्यात्। यहां जो कुछ मेरा भाग हो वह मुझको भी मिले, इत्यादि। यहां कर्मप्रवचनीय संज्ञा के दो प्रयोजन हैं एक तो द्वितीया का होना, दूसरा षत्व का निषेध। जैसे वीप्सा–वृक्षं वृक्षं प्रति सिञ्चति, परि सिञ्चति, अनु सिञ्चति।

(प्रश्न) परि शब्द के योग में पञ्चमी विभक्ति प्राप्त है सो क्यों नहीं होती ?

(उत्तर) जहां पञ्चमी का विधान है वहां जो वर्जन अर्थ वाले अप और परि एकत्र पढ़े हैं, उन्हीं का ग्रहण होता है अन्य का नहीं।

१६४–अभिरभागे ॥ अ० १। ४। ९१ ॥

जो भाग को छोड़ के पूर्वसूत्र में कहे हुए अन्य लक्षण आदि तीन अर्थों में वर्तमान अभि शब्द हो तो वह कर्मप्रवचनीय संज्ञक हो। लक्षण–वृक्षमभि विद्योतते। इत्थंभूताख्यान–साधुर्बालो मातरमभि। वीप्सा–वृक्षं वृक्षमभिसिञ्चति इत्यादि। यहां 'अभागे' ग्रहण इसलिये है कि "यदत्रास्माकमभिष्यात्" इत्यादि। यहां कर्मप्रवचनीय संज्ञा के न होने से षत्व हो जाता है[1]।

---

1. जब कर्मप्रवचनीय संज्ञा नहीं होती तब उपसर्ग संज्ञा होती है। उपसर्ग संज्ञा होने पर "उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः" (अ० ८३५) से षत्व होता है। यु० मी०।

१६५–प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः ॥अ०१।४।९२॥

प्रतिनिधि कहते हैं किसी की अनुपस्थिति में दूसरे तुल्य स्वभाव गुण कर्म वा आकृति वाले का स्थापन करना और प्रतिदान अर्थात् एक वस्तु के बदले में दूसरी वस्तु देना है। जो इन दो अर्थों में वर्तमान प्रति शब्द हो तो उस की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो। इसका फल—

१६६–प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात् ॥अ०२।३।११॥

जिस से प्रतिनिधि और प्रतिदान हों वहां कर्मप्रवचनीय के योग में पञ्चमी विभक्ति हो। जैसे—अभिमन्युरर्जुनात् प्रति। अभिमन्यु को अर्जुन के स्थान में रक्खा, यही प्रतिनिधि कहाता है। प्रतिदान–तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान्। तिलों के बदले उड़द देता है। यह प्रतिदान कहाता है। यहां इन दोनों अर्थ का ग्रहण इसलिये है कि "शास्त्राणि प्रत्येति" इत्यादि में प्रति शब्द की कर्मप्रवचनीय संज्ञा न हो।

१६७–अधिपरी अनर्थकौ ॥ अ० १ । ४ । ९३ ॥

धातु का जो अर्थ है उससे पृथक् अर्थ के कहने वाले न हों ऐसे जो अधि और परि शब्द हैं उन की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो। कुतोऽध्यागम्यते, कुतः पर्य्यागम्यते, यहां पञ्चमी विभक्ति तो अपादान संज्ञा के होने से सिद्ध ही है। फिर कर्मप्रवचनीय संज्ञा करने का प्रयोजन यह है कि गति और उपसर्ग संज्ञा न हों। यहां अनर्थक ग्रहण इसलिये है कि "संज्ञामधिकुरुते" इत्यादि में कर्मप्रवचनीय संज्ञा न हो के [कर्म में] द्वितीया विभक्ति हो।

१६८–सुः पूजायाम् ॥ अ० १ । ४ । ९४ ॥

जो पूजा अर्थात् सत्कार अर्थ में वर्तमान सु शब्द है उसकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो। जैसे—सुस्तुतम्, सुस्मृतम्। अच्छी स्तुति

और स्मरण आप ने किया। यहां कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से उपसर्गकार्य षत्व नहीं हुवा। पूजा ग्रहण इसलिये है कि "सुषिक्तं कि त्वया" क्या तूने अच्छा सींचा, इत्यादि में कर्मप्रवचनीय संज्ञा नहीं होती।

१६९–अतिरतिक्रमणे च ॥ अ० १ । ४ ९५ ॥

जो अतिक्रमण अर्थात् उल्लङ्घन और पूजा अर्थ में वर्तमान अति शब्द हो तो वह कर्मप्रवचनीय संज्ञक होवे। जैसे—अतिक्रमण–अतिसक्तिमेव भवता। ठीक २ नहीं सींचा किन्तु कीच कर दी। पूजा–अतिसेवितो गुरुस्त्वया। तू ने गुरु की अति सेवा की। यह पूजा कहाती है। इसका फल यह है कि षत्व का निषेध हो जाता है[1]। यहां इन दो अर्थों का ग्रहण इसलिये है कि 'सुष्टुतं मया'। कोई अभिमान करता है कि मैंने बड़ी अच्छी स्तुति की, इत्यादि में कर्मप्रवचनीय संज्ञा के न होने से षत्व का निषेध न हुआ।

१७०–अपिः पदार्थसंभावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु ॥ अ० १ । ४ । ९६ ॥

जो पदार्थ, संभावना, अन्ववसर्ग, गर्हा और समुच्चय इन पांच अर्थों में वर्तमान पद उसके योग में अपि शब्द की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो। जैसे—सर्पिषोऽपि स्यात्। कुछ घृत भी होना चाहिये। सम्भावना = सम्भव होना–अपिसिञ्चेद् वृक्षशतम्। सम्भव है कि यह मनुष्य सौ वृक्ष तक सींच सके। अन्ववसर्ग = आज्ञा करना–अपिसिञ्च। तू सींच। गर्हा = निन्दाकरना–धिक् ते जन्म यत्पाषाणमपि स्तौषि। तेरे मनुष्यजन्म को धिक्कार है, जो तू पत्थरों की भी

१. कर्मप्रवचनीय संज्ञा उपसर्ग संज्ञा की बाधक है, उपसर्ग संज्ञा न होने से षत्व नहीं होता। यु० मी०।

स्तुति करता है। समुच्चय क्रियाओं का इकट्ठा होना अपि-सेवस्व, अपिस्तुहि। सेवन भी कर स्तुति भी कर। इन सब अर्थों में अपि शब्द की उपसर्ग संज्ञा न होने के लिये कर्मप्रवचनीय संज्ञा की है जिससे उक्त प्रयोगों में मूर्द्धन्य षकार न हो जावे। यहां पदार्थादि अर्थों का ग्रहण इसलिये है कि "अपिकृत्य" इत्यादि में कर्मप्रवचनीय संज्ञा होके ल्यप् का निषेध न हो।

१७१–अधिरीश्वरे ॥ अ० । १ । ४ । ९७ ॥

इस सूत्र में ईश्वर शब्द से समर्थ मनुष्य का ग्रहण समझना चाहिये। जो ईश्वर अर्थ में वर्तमान अपि शब्द है उसकी कर्मप्रवचीय संज्ञा हो। अधिग्रामे क्षत्रियः, यह क्षत्रिय ग्राम में समर्थ अर्थात् उसका अधिष्ठाता है। यहां कर्मप्रवचनीय संज्ञा के होने से * सप्तमी विभक्ति हो जाती है। यहां ईश्वर ग्रहण इसलिये है कि "खट्वाम-धिशेते" यहां कर्मप्रवचनीय संज्ञा के नहीं होने से द्वितीया विभक्ति हुई है।

१७२–विभाषा कृञि ॥ अ० १ । ४ । ९८ ॥

जो कृञ् धातु के प्रयोग में युक्त अधि शब्द हो तो वह विकल्प करके कर्मप्रवचनीय संज्ञक हो। अधिकृत्वा अधिकृत्य, यहां जिस पक्ष में कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है वहां † समास के न होने से

---

* (सप्तमी विभक्ति) यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी। यह सूत्र पूर्व पृष्ठ (संख्या १५९) लिख आये हैं।

† जहां कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है, वहां गति संज्ञा नहीं होने पाती, उसके न होने से "गतिश्च" [अष्टा० १ । ४ । ५९] इससे समास भी नहीं होता, समास के न होने से "समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्" [आ० १५३२] इससे ल्यप भी नहीं होता।

क्त्वा के स्थान में ल्यप् नहीं होता। और जिस पक्ष में कर्मप्रवचनीय संज्ञा नहीं होती, उसमें समास हो के क्त्वा के स्थान में ल्यप् आदेश हो जाता है, इसके अन्य भी बहुत प्रयोजन हैं।

इति श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीव्याख्याकृतोऽष्टाध्याय्यां कारकीयोऽयं ग्रन्थः समाप्तः॥

वसुरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे नभस्यस्यासिते दले।
अष्टम्यां बुधवारेऽयं ग्रन्थः पूर्त्तिं गतः शुभः॥

संवत् १९३८ भाद्र वदी बुधवार के दिन यह कारकीय ग्रन्थ श्रीयुत स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने पूरा किया।

कार्यकर्ता करेंगे आतिशबाजी

पार्टी कार्यकर्ता की ओर से जगह-जगह केक काटने और अस्सीघाट पर आतिशबाजी की भी तैयारी है। दोनों स्थानों पर हुई बैठक में जिलाध्यक्ष हंसराज विश्वकर्मा, सुरेश सिंह, प्रभात सिंह, ज्ञानेश जोशी, नागेन्द्र रघवंशी, अशोक तिवारी, धर्मेन्द्र सिंह, संजय राय, चंद्रशेखर उपाध्याय, शोभनाथ विश्वकर्मा मौजूद थे।

सभाओं और उसमें शामिल होने वाले लोगों की संख्या के मद्देनजर की गई तैयारी के बारे में जानकारी हासिल करेंगी। मौसम खराब होने की स्थिति में सड़क मार्ग का रूट तैयार होगा। वहीं सुरक्षा के मद्देनजर लोकल खुफिया एजेंसी के साथ ही इंटेलिजेंस समेत सभी खुफिया एजेंसी भी सतर्क हैं। एसएसपी आनन्द कुलकर्णी ने एसपी सिटी, एसपी ग्रामीण, एसपी क्राइम, एसपी प्रोटोकॉल के साथ सुरक्षा का खाका तैयार करना शुरू कर दिया है।

ठहराने के करें आवेदन

अपील

- गणमान्य और प्रतिष्ठान मालिकों से वीडीए उपाध्यक्ष ने की अपील
- वीडीए उपाध्यक्ष ने बताया, एप पर रोज 400 आवेदन, जांच के बाद 89 को मिली मंजूरी

अधिकारियों को कम से कम एक अतिथि ठहराना होगा

उपाध्यक्ष ने बताया कि नगर व नगरीय सीमा पर रहने वाले सभी अधिकारियों को भी जिलाधिकारी के माध्यम से निर्देशित किया गया है कि कम से कम एक अतिथि के ठहराने के लिए अपने घर में प्रबंध कराएं। साथ वह अन्य लोगों को भी इसके लिए जोड़ें।

वाराणसी डेवलपर्स व बिल्डर्स एसोसिएशन करीब 400 से ज्यादा आवास उपलब्ध कराने को तैयार है। बाकी अन्य मेहमानों को ठहराने के लिए उपाध्यक्ष जिले के अधिकारियों के साथ